हिन्दी काव्य

संग्रहकार

डा० गायत्री देवी वैश्य, एम० ए०, पी एच० डी०

महारानी कॉलेज, जयपुर

विद्या भवन

हिन्दी काव्य

संग्रहकार
डा० गायत्री देवी वैश्य, एम० ए०, पी एच० डी०
महारानी कॉलेज, जयपुर

विद्या भवन
पुस्तक प्रकाशक जयपुर

हिन्दी काव्य

दो शब्द

'हिन्दी काव्य' में हिन्दी साहित्य के कुछ प्रमुख कवियों की उत्कृष्ट
ाएँ संगृहीत हैं। यह संग्रह विश्व-विद्यालय की प्रारम्भिक
ाओं के पाठ्यक्रम को दृष्टि में रखकर तैयार किया गया है।
ताओं के चयन में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है
मनोरंजन के साथ साथ विद्यार्थियों के हृदय में हिन्दी साहित्य की
र सहज रुचि उत्पन्न हो और उनका मानसिक विकास तथा ज्ञान-
द्ध हो सके।

इस संग्रह में ब्रज, अवधी और खड़ी बोली इन तीनों भाषाओं के
ानिधि कवियों की सुन्दर और सरस रचनाएँ चुन चुन कर पृथक
क खण्डों में प्रस्तुत की गई हैं। प्रवन्ध काव्यों के अंशों को विशेष रूप
स्थान देने का यत्न किया गया है क्योंकि कथात्मक साहित्य की ओर
द्यार्थियों की प्रवृत्ति सहज ही पाई जाती है। संग्रह में इस बात का
ी ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य की प्रगति
ौर क्रमिक विकास का परिचय प्राप्त हो सके। प्रारम्भ में कवियों
ा संक्षिप्त परिचय और अन्त में कतिपय कठिन शब्दों के अर्थ भी दे
द्ये गये हैं।

आशा है कि यह संग्रह हिन्दी काव्य प्रेमियों, विशेष कर विद्या-
र्थियों की साहित्यिक अभिरुचि को परिष्कृत करने में पर्याप्त सहायक
ो सकेगा।

—संग्रहकार

विषय-सूची

प्रथम-खण्ड

द्वितीय-खण्ड

तृतीय-खण्ड

भूमिका

हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रवृत्तिविशेष की प्रधानता के अनुसार चार कालों में विभक्त किया गया है:—वीरगाथा काल (संवत् १०५० से १३७५ तक) ,पूर्वमध्यकाल अथवा भक्ति काल (संवत् १३७५ से १७०० तक) ,उत्तरमध्यकाल अथवा रीति काल (संवत् १७०० से १६०० तक), और आधुनिक काल संवत् १६०० से अब तक) । वीरगाथा काल के कवि प्रायः चारण थे और राजाओं के आश्रित थे । उन्होंने धनप्राप्ति की लालसा अथवा रण-भूमि में शत्रुओं के विरुद्ध उत्तेजना एवं उत्साह देने के लिए ओजभरी कविताओं में अपने आश्रयदाताओं का यशोगान किया। वीररस-प्रधान होने के कारण उनको ये रचनायें वीरगाथा कहलायी और इसी से इस काल का नाम भी वीरगाथा काल पड़ा। इस काल की प्रधान भाषा डिङ्गल थी । इसमें अनेक ग्रन्थ लिखे गये जिन्हें रासो कहते हैं और उनमें चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराजरासो सबसे अधिक प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य रचनायें भी हुई जिनमे जगनिक का आल्हाखण्ड अत्यन्त प्रसिद्ध है ।

वीरगाथा काल के समाप्त होते होते उत्तर भारत में मुसलमानों का आधिपत्य हो चला था और उन्होंने राज्य-विस्तार के साथ साथ धर्मप्रसार का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया था । हिन्दुओं की शक्ति क्षीण हो जाने से उन्होंने मुसलमानों का विरोध करना छोड़ दिया और धीरे धीरे उनमें मेल-जोल की भावना उत्पन्न हो चली थी ।

अपने व्यथित हृदय को सान्त्वना देने के लिए हिन्दुओं ने ईश्वर का सहारा लिया और हिन्दू तथा मुसलमानों में परस्पर प्रेम एवं एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्न किये जाने लगे। इस बदली हुई परि-स्थिति का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा और काव्य धारा बदल कर भक्ति की ओर उन्मुख हो गई। ऐसा प्रयत्न करने वालों में कबीर प्रमुख थे। हिन्दू और मुसलमानों के बीच प्रेम कराना ही इनके जीवन का मूल मन्त्र था। अतः इन्होंने निर्गुण ब्रह्म की आरा-धना का उपदेश दिया और राम तथा रहीम की एकता बतला कर दोनों जातियों में भ्रातृभाव स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन्होंने ज्ञान को विशेष महत्व दिया अतः उनके द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा ज्ञानमार्गी कहलाई। इनके अतिरिक्त निर्गुण उपासकों का एक सम्प्रदाय और भी था जो ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व देता था। अतः प्रेम को लेकर ईश्वरोपासना की जो पद्धति प्रचलित हुई वह प्रेममार्गी कहलाई। इस धारा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए। इन्होंने अवधी में रचना की और उनका पद्मावत हिन्दी साहित्य का एक अनूठा ग्रन्थ है। निर्गुण आराधना के साथ ही साथ एक ऐसी धारा भी चली जो विशुद्ध भारतीय परम्परा पर आश्रित थी और जिसका मूल तत्व सगुणोपासना था। रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य इस धारा के प्रवर्तक थे।

राम और कृष्ण सगुण ईश्वर के ये दो रूप सर्व प्रधान थे। इन्हीं को लेकर रामानुज तथा वल्लभ ने क्रम से रामोपासना और कृष्णोपासना का प्रचार किया। इस प्रकार सगुणोपासना की ये दो शाखाएं हो गईं—रामभक्ति और कृष्णभक्ति। दोनों का ही उद्देश्य संसार से पीड़ित मनुष्यों को शान्ति देने के लिये भगवद्भक्ति में लीन ' । इनमें अन्तर्ज्ञान की अपेक्षा उपासना को अधिक महत्व

दिया गया। रामोपासक कवियों ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं को अपनाया था और कृष्णोपासक कवि ब्रज-भाषा में ही कविता करते थे। रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास हुए और कृष्ण भक्ति के सूरदास। कृष्णोपासकों में मीरा और रसखान ने भी ख्याति प्राप्त की। भाव और भाषा दोनों ही रूपों में इस काल में हिन्दी कविता ने अत्यन्त उन्नति की। अपनी उत्कृष्टता के कारण यह काल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग कहलाता है।

यह वह समय था जब मुगल साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर था। देश में सुख और शान्ति थी। लोग अपने को सुरक्षित समझने लगे थे। किन्तु जहांगीर और शाहजहाँ के शासन काल में देशी नरेश विलासी हो गये थे अतः उनके आश्रित कवियों का भी उधर प्रवृत्त होना स्वाभाविक था। कवि प्रायः धनलिप्सा के कारण अपने आश्रयदाता राजाओं तथा सामन्तों की विलासी प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिये शृङ्गारी रचनायें करते थे। भक्तिभाव कम हो चला था और कवियों की प्रतिभा उधर से हट कर कविता को अलंकृत करने की ओर प्रवृत्त हो गई थी। अतः इस काल में अनेक रीति ग्रन्थों की रचना हुई। इसी लिये इस काल को रीतिकाल कहते हैं। शृङ्गारप्रधान रचनाओं की प्रचुरता के कारण इसी काल को शृङ्गारकाल भी कहा जाता है। केशव, देव, भूषण तथा बिहारी आदि इस काल के प्रसिद्ध कवियों में से हैं। इस काल में शृङ्गार रस की प्रधानता अवश्य रही किन्तु वीर रस की रचनायें भी बहुत हुईं। भाषा प्रधानतः ब्रज थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में मुगल साम्राज्य का अन्त हो चला था और अंग्रेजी शासन की नींव पड़ गई थी। उस समय तत्कालीन बदली हुई परिस्थितियों के कारण हमारे साहित्य का रूप एक बार

फिर बदला और तभी से आधुनिक काल का आरम्भ हुआ। इस काल में पहिले गद्य में और कुछ समय के अनन्तर कविता में भी शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग हुआ। कविता पहले व्रजभाषा में ही होती थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविता करने लगे थे परन्तु महावीरप्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली की कविता को विशेष महत्व दिया और इस ओर कवियों को प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया। शनैःशनैः खड़ीबोली की कविता का प्राधान्य हुआ वह व्रजभाषा की कविता पर छागई। इस कालमें कविता की अनेक रूपों में प्रगति हुई, राष्ट्रीयतावाद, छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद और प्रगतिवाद आदि अनेक वादों का सृजन हुआ। राष्ट्रीय भावना को जागृति के साथ राष्ट्रीय कविताएं रची गईं। इस भावना का सूत्रपात तो हमें भारतेन्दु जी की रचनाओं में ही मिलता है किन्तु पं० श्रीधर पाठक, श्री मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि परवर्ती कवियों की रचनाओं में उसका अत्यन्त उत्कर्ष हुआ। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अतुकान्त छन्दों की रचना को प्रोत्साहन दिया। श्री जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला तथा सुमित्रानन्दन पन्त ने छायावाद और रहस्यवाद का प्रवर्तन किया। निराला जी ने स्वच्छन्द छन्दों का प्रचलन किया। महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा ने भी छायावाद का ही अनुसरण किया। श्री उदयशंकर भट्ट की रचनाओं में हमें रुढ़िवाद का विरोध मिलता है और बच्चन में हालावाद के दर्शन। इस प्रकार भाव और शैली दोनों ही दृष्टियों से आधुनिक कविता में कई प्रकार की विशेषताएं लाने का प्रयत्न किया गया। संस्कृत की शैली पर अतुकान्त कविता का प्रचार हुआ। नवीन स्वच्छन्द छन्दों की उत्पत्ति हुई और अलंकार शास्त्र की

परम्परागत रूढ़ियों को छोड़ कर काव्य में नूतन भावनाओं की सृष्टि हुई। तात्पर्य यह कि कविता की धारा अनेक दिशाओं में वही।

प्रस्तुत संग्रह में उपर्युक्त कालक्रम का अनुसरण न कर भाषा भेद से ही कवियों का वर्गीकरण किया गया है। व्रिज-निकुञ्ज में व्रजभाषा के भक्तिकाल के प्रमुख कवि श्री सूरदास जी तथा मीरा और रसखान की रचनायें ली गई हैं। रीतिकाल से भूषण और बिहारी तथा आधुनिक काल से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त आदि की रचनायें संगृहीत हैं। अवधी-विलास में जायसी, गोस्वामी तुलसी-दास के आदि की रचनायें हैं और खड़ी बोली-सुषमा में विभिन्न धाराओं कुछ चुने हुए कवियों की रचनायें संग्रहीत हैं। नीचे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१—सूरदास

इनका जन्म सम्वत् १५४० के लगभग आगरा के समीप रुनकता नामक ग्राम में हुआ था। इनकी जाति तथा जीवन की घटनाओं के संबन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इन्हें महाकवि चन्दवरदाई का वंशज बतलाते हैं किन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि वे सार-स्वत ब्राह्मण थे। यह तो निश्चित है कि वे अन्धे थे किंतु जन्मांध थे या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। युवावस्था में ही ये संसार से विरक्त होकर भगवद्भजन में लीन हो गये और पीछे स्वामी वल्लभाचार्य से दीक्षा लेकर कृष्ण के सगुण रूप के उपासक परम वैष्णव बन गये थे। गुरु की प्रेरणा से इन्होंने कृष्णलीला का वर्णन किया और कहा जाता है कि सवा लाख पदों में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सूरसागर की रचना की। पर अभी तक उसके लगभग ६००० पद

ही प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त इनके दो ग्रन्थ और कहे जाते हैं, एक 'सूरसारावली' और दूसरा इनके दृष्टि-कूट पदों का संग्रह 'साहित्य-लहरी'। कृष्णोपासक कवियों में सूरदास का स्थान सर्व श्रेष्ठ है। ये कृष्ण के बालरूप और माधुर्यभाव के उपासक थे। कृष्ण की लीलाओं में ये ऐसे निमग्न हो जाते थे कि उनकी एक एक लीला का वर्णन इन्होंने इस प्रकार किया है कि एक भी भाव शेष नहीं रह गया। यों तो इनके काव्य में सभी भावों के दर्शन होते हैं पर वात्सल्य और विरह उन में प्रधान हैं। वात्सल्य-सम्बन्धी पदों को पढ़ते या सुनते समय तो बालकृष्ण की छवि नेत्रों के सन्मुख साकार हो उठती है। इसी से इन्हें हिन्दी साहित्य में वात्सल्यवतार कहा जाता है। विरह-सम्बन्धी पदों में भी इन्होंने करुणारस की जो रागिनी छेड़ी है वह हिन्दी काव्यों में अनुपम है। ये सख्य भाव से ईश्वर की भक्ति करते थे और काव्यों में इन्होंने इसी का संदेश दिया है। भ्रमरगीत, निर्गुण के स्थान पर सगुण ब्रह्म की स्थापना एवं उपासना के प्रचार में इन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इनके भाव गम्भीर, कल्पना उदात्त और भाषा प्राञ्जल है। अपने इन्हीं गुणों के कारण इन्हें हिन्दी काव्याकाश का सूर्य कहा गया है। संवत् १६४० में इन्होंने गोलोकवास किया।

२—मीरा

इन का जन्म संवत् १५५५ में मेड़ता (जोधपुर) के कुड़की नामक ग्राम में हुआ था। यह मेड़तिया के राठोर महाराज रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदा जी की पौत्री और जोधपुर बसाने वाले प्रसिद्ध राव जोधा जी की प्रपौत्री थी। चित्तौर-रक्षक प्रसिद्ध वीर जयमल इनके चचेरे भाई थे। इनका विवाह संवत् १५७३ में उदयपुर के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। बाल्यावस्था में ही

माता का देहान्त हो जाने से मीरा का क्रीड़ास्थल माँ की गोद से हटकर पितामह दूदा जी की गोद में आगया था। दूदाजी बड़े भारी वैष्णव थे। उनके निरन्तर साथ रहने के कारण बालिका मीरा में भी वैष्णव धर्म के तत्वों का विकास स्वभाविक रूप से हुआ। ये कृष्ण की उपासिका थीं और उन्हें पति रूप में मानकर उनकी भक्ति व आराधना करती थीं। संवत् १५८८ में पति का देहान्त हो जाने पर गिरधर गोपाल की मूर्ति ही इनका प्राणाधार होगई और यह कृष्ण भक्त सन्त महात्माओं के सत्सङ्ग में रहने लगी। रत्नसिंह के पीछे उनके सौतेले भाई विक्रमसिंह चित्तौड़ के राजा हुए। इन्होंने राज-वंश की मर्यादा रखने के लिए मीरा से वैरागियों का साथ छोड़ देने के लिये कहा, पर मीरा ने अस्वीकार किया। क्रुद्ध होकर राजा तथा सुसराल के अन्य लोगों ने मीरा को तङ्ग करना आरम्भ किया। राजा ने उन्हें मारने के लिए विष का प्याला भेजा किन्तु मीरा ने उसे चरणामृत मानकर पी लिया। राणा ने फिर एक पिटारे में साँप भेजा पर मीरा ने ज्योंही पिटारा खोला उसमें उन्हें फूल की एक माला मिली। इस प्रकार भगवत्कृपा से मीरा का बाल भी बाँका न हुआ। किन्तु जब मीरा ने देखा कि भगवान् की भक्ति के कारण सारा परिवार ही उनके विरुद्ध है तो घर बार छोड़ कर वृन्दावन चलीं गईं और वहीं कृष्णभक्ति में लीन रहने लगीं। संवत् १६०३ में उनका स्वर्गवास होगया।

मीरा की गणना उच्चकोटि के भक्त कवियों में होती है। स्त्री कवियों में तो इनका स्थान निर्विवाद सर्वोच्च है। इन के पद बड़े ही मनोहर, भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हैं। इन की कविता का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह सरल तथा निश्चल हृदय का तन्मय उद्गार है। भाषा इनकी राजस्थानी मिश्रित ब्रज है किन्तु वह सर्वथा सरल और सुबोध है। इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है जिनमें नरसीजी

का मायरा, रागगोविन्द तथा राग सोरठ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'गीत गोविन्द' की भी टीका की थी जिससे प्रकट होता है कि वे संस्कृत की भी पण्डिता थी। इनकी कविता में गीति-काव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है।

३—रसखान

हिन्दी के कृष्ण भक्त मुसलमान कवियों में रसखान का स्थान बहुत ऊँचा है। इनके जीवनवृत्त के विषय में निश्चित रूप से कुछ पता नहीं है। कहा जाता है कि इन के जीवन का प्रारम्भिक भाग भौतिक-प्रेममय था। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार ये एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। लोगों को इन्होंने कहते हुए सुना कि जैसा रसखान का प्रेम बनिये के लड़के पर है वैसा ही प्रेम भगवान् पर होना चाहिये। रसखान यह बात सुन कर विरक्त हो विट्ठलनाथ जी के पास गये और उनसे दीक्षा लेकर कृष्णभक्ति में लीन हो गए। विट्ठलनाथजी का निधन सम्वत् १६४३ में माना जाता है अत: रसखान का आविर्भाव १७वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में ही मानना चाहिये। इनका सम्बन्ध दिल्ली के पठान बादशाहों की परम्परा से बताया जाता है। इसकी पुष्टि इस दोहे से होती है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छोड़ि रसखान॥

इनका कविता काल सम्वत् १६७१ माना जाता है क्योंकि इसी समय इनकी प्रसिद्ध रचना 'प्रेम-वाटिका' लिखी गई। इन की दूसरी रचना 'सुजान रसखान' है। इनके काव्य की विशेषता यह है कि इन्होंने अपने समय की प्रचलित गीत पद्धति को छोड़ कर कवित्त और ... में अपनी रचना की। प्रेम-वाटिका में दोहे है और सुजान

में कवित्त सवैये । इनमें प्रेम और शृंगार का अधिक वर्णन है। प्रेम की अनुभूति जितने रसपूर्ण शब्दों में रसखान ने की है वैसी हिन्दी में बहुत कम पाई जाती है। इनके भाव बड़े ही उदात्त और भाषा सरल हे। तन्मयता इनकी कविता का विशेष गुण है ।

४—भूषण

भूषण का जन्म संवत् १६९२ में कानपुर मण्डल के तिकवांपुर ग्राम में हुआ था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम रत्नाकर था। भूषण चार भाई थे—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नीलकण्ठ (जटाशङ्कर)। ये चारों भाई सुकवि थे। चिन्तामणि औरंगजेब के दरवारी कवि थे। कहते है कि भूषण प्रारम्भ से बड़े आलसी थे, खाना और सोना यही इनकी दिनचर्या थी। एक दिन भोजन के समय दाल में नमक कम होने पर इन्होंने अपनी भावज से नमक मांगा तो उसने ताना मारते हुए कहा—'हां बहुत सा नमक कमा कर लाए हो न जो उठा लाऊं। भूषण यह व्यंग्योक्ति न सह सके और तत्काल ही भोजन छोड़ कर उठ कर खड़े हुए और बोले कि अब जव हम नमक कमा कर लायेंगे तभी यहां भोजन करेंगे। ऐसा कह रुष्ट होकर घर से निकल पड़े और वड़े परिश्रम से विद्याध्ययन करने लगे। थोड़े ही समय में इन्हें कविता करने का अच्छा अभ्यास हो गया और यह चित्रकूटाधिपति हृदयराम सोलंकी के पुत्र रुद्रराम के आश्रय में रहकर वीररस की कविता करने लगे। इनकी प्रतिभा और चमत्कारिक कविताओं से प्रसन्न होकर रुद्रराम ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी। तभी से यह इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये और इनके वास्तविक नाम का पता भी न रहा। कुछ समय पश्चात् यह औरंगजेब के दरवार में पहुँचे और अपने भाई की सहायता से वहां

इन्हें कविमण्डली में स्थान मिला । किन्तु एक वार किसी बात पर वादशाह के अत्यन्त अप्रसन्न होने पर इन्होने दिल्ली छोड़ दी और सीधे शिवाजी के दरवार मे पहुचे । वहां इन्होने शिवाजी की प्रशंसा में वावन पद सुनाए जिससे शिवाजी ने प्रसन्न होकर इन्हें बहुत सा पुरस्कार दिया । भूषण बहुत दिन तक शिवाजी के दरबार में रहे । तदनन्तर घर लौटते हुए मार्ग मे कुछ समय के लिये बुन्देलों के राजा महाराजा छत्रसाल के यहां भी ठहरे । छत्रसाल की प्रशंसा मे इन्होंने 'छत्रसाल दशक' नामक ग्रंथ की रचना की । शिवराजभूषण, शिवा-वावनी और छत्रसालदशक इनके ये ही तीन ग्रंथ इस समय उपलब्ध है । यह अपने समय के वीर-रस के सर्वोत्तम कवि थे । देश की स्वा-धीनता के उपासकों का गुणगान इन्होने बड़े उत्साह से ओजपूर्ण शब्दों मे किया है । संवत् १७६४ मे १०२ वर्ष की दीर्घायु भोग कर इन्होंने संसार त्याग किया ।

५ —बिहारीलाल

महाकवि विहारीलाल का जन्म संवत् १६६० में ग्वालियर के निकट वसुआ गोविन्दपुर नामक ग्राम मे हुआ था । यह जाति के माथुर चौबे थे और जयपुर के मिर्जा राजा जयसिह के दरवारी कवि थे । कहते हैं कि महाराज जयसिह के दो रानियां थी । उन में से महा-राज छोटी रानी पर इतने आसक्त थे कि उसके कारण इन्होने राज-काज को देखना छोड़ दिया था । एक वार बड़ी रानी के कहने पर विहारीलाल ने निम्न दोहा लिख कर महाराज के पास अन्त:पुर मे भिजवाया—

नहिं पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास यही काल :
अली कली ही सो वंध्यों, आगे कौन हवाल ॥

महाराज दोहा पढ़ते ही तुरन्त बाहर आये और उन्होंने बिहारी लाल को और दोहे बनाने का आदेश दिया। इस पर बिहारी ने सात सौ दोहों की रचना की जिसका संग्रह 'विहारी सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ हिन्दी काव्य साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखता है। अब तक उस पर नई और पुरानी कितनी ही टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। बिहारी के दोहे वस्तुतः हिन्दी साहित्य के रत्न हैं। इनकी विशेषता यह है कि छोटे छोटे दोहों में बिहारी ने चमत्कार के साथ अधिक से अधिक अर्थ भरने की चेष्टा की है। इसी से किसी ने कहा है–

सतसइया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर॥

यों तो सतसई में नीति और भक्ति के भी दोहे हैं पर विशेषकर उन में शृंगार रस का ही वर्णन है। भाव अनूठे और कहने का ढंग चमत्कारपूर्ण है। भापा शुद्ध और भाव गंभीर होने पर भी प्रायः सरल और सरस है। बिहारी की मृत्यु संवत् १७२० में हुई।

६—भारतेन्दु हरिश्चन्द

इनका जन्म सं० १९०७ में काशी में हुआ। इनके पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास था। वे बड़े अच्छे कवि और दानी थे। भारतेन्दु जी को बचपन से ही साहित्य से प्रेम था। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने खेल में यह दोहा लिखा थाः—

ले ब्योड़ा ठाड़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को हनन लगे भगवान॥

इसी से इनकी विलक्षण प्रतिभा का पता चलता है। दुर्भाग्य से इनके पिता का देहान्त इनकी दस वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। अतः यह स्वच्छन्द हो गये। किन्तु फिर भी ये इतने विद्याप्रेमी थे कि उस दशा में भी इन्होंने अपने को सुधारा और हिन्दी, फारसी अंगरेजी, मराठी तथा गुजराती आदि अनेक भाषाओं का मन लगा कर अध्ययन किया। इनके पास अतुल सम्पत्ति थी। वैभव की गोद में पालित पोषित होने के कारण इनकी प्रकृति स्वतन्त्र और विलासी हो गई थी, किन्तु ये इतने उदार थे कि जिसने जो मांगा दिया। ये अत्यन्त विनोदी और विष्णुभक्त थे। इनका विद्यानुराग और साहित्य प्रेम इसी से झलकता है कि ३५ वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने छोटे बड़े लगभग १७५ ग्रन्थ लिख डाले। इनकी विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर ही काशी के विद्वानों ने इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया।

वे वर्तमान हिन्दी गद्य के जन्मदाता और ब्रजभाषा के आधुनिक महाकवि थे। उनमें देश प्रेम की भावना बड़ी ही प्रौढ़ थी। अतः कविता को शृंगार की संकीर्ण गली से निकाल कर इन्होंने उसे राष्ट्रीयता की ओर मोड़ दिया। इसके अतिरिक्त काव्य, नाटक, समाचार पत्र आदि अनेक दिशाओं में हिन्दी का प्रकाश फैलाकर उन्होंने हिन्दी का मस्तक ऊंचा किया। हिन्दी के लिये वे सचमुच अवतार थे। यद्यपि इनकी साहित्यिक प्रसिद्धि नाटकों के कारण अधिक है पर ये कवि भी उच्चकोटि के थे। इनकी रचना में करुणरस के अतिरिक्त हास्य और व्यंग के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। भाषा इनकी बड़ी ही सरल और परिमार्जित है। इनके ग्रन्थों का संग्रह 'भारतेन्दु नाटकावली' और 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के नाम से निकला है और

एक संग्रह 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के नाम से भी कई भागों मे है। संवत् १९४२ में क्षयरोग से इनका शरीरान्त हुआ।

७—मलिक मुहम्मद जायसी

जायसी के जीवनवृत्त के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। इनका जन्म संवत् १५५६ के लगभग गाजीपुर के एक दरिद्र मुसलमान कुल में हुआ था। सात वर्ष की अवस्था में इनके चेचक निकली जिससे इनकी एक आंख और एक कान शक्तिहीन हो गए। बाल्यावस्था में ही ये अनाथ हो गए और फकीरों के साथ इधर उधर घूमने लगे। उन्ही के संसर्ग में इन्होने सूफी मत की शिक्षा पाई। बड़े होने पर ये जायस में रहने लगे और इसी से जायसी कहलाए। वे सैयद मुहीउद्दीन चिश्ती के शिष्य थे और शेरशाह सूरी का आश्रय भी इन्होंने प्राप्त किया था। इनका हृदय अत्यन्त कोमल और भावुक था। सूफी सिद्धान्तों को तो ये जानते ही थे साथ ही साथ हिन्दू धर्म के लोक प्रसिद्ध वृत्तान्तों से भी परिचित थे और इस प्रकार जनता की धार्मिक मनोवृति को सन्तुष्ट करने में सफल हुए। इन्होंने तत्कालीन प्रचलित सूफी सिद्धान्तों को सरल और मनोरंजक रूप में रख कर जनता की रुचि अपनी ओर आकर्षित की और मुसलमान होते हुए भी हिन्दू महारानी पद्मावती का आदर्श चरित्र अपने प्रबन्ध काव्य का विषय बनाया। इनकी भाषा ठेठ अवधी थी जिसमें दोहे और चौपाइयों में इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत की रचना की। इनका दूसरा ग्रंथ अखरावट है। प्रेममार्गी धारा के वे प्रवर्तक कवि थे और पद्मवत के द्वारा इन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के जीवन में व्यवहार की एकता का सराहनीय प्रयत्न किया। इनका मृत्यु काल संवत् १५९९ के लगभग माना जाता है।

८—गोस्वामी तुलसीदास जी

गोस्वामीजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। खेद का विषय है कि उनके जन्मकाल तथा जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। तथापि अब तक की खोज के आधार पर जो निष्कर्ष निकाला गया है वह संक्षेप में यह है कि इनका जन्म संवत् १५८३ में बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में हुआ था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे और इन के पिता का नाम आत्माराम तथा माता का नाम हुलसी था। शैशवावस्था में ही पिता के स्नेह से वञ्चित होकर सर्वथा अनाथ हो गए थे। अतः महात्मा बाबा नरसिंहदास ने इन्हें अपने संरक्षण में ले लिया और शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय के अनन्तर ये काशी पहुंचे और वहां श्री शेष सनातन के शिष्य बन कर इन्होंने वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, पुराण आदि विषयों का भली भाँति अध्ययन किया। १५ वर्ष की अवस्था में ये पुनः अपनी जन्मभूमि राजापुर लौटे और वहीं दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से इन का विवाह हुआ। कहते हैं कि पत्नी के प्रति अतिशय अनुराग होने के कारण एक बार ये उसके पीछे पीछे रात में ही ससुराल पहुंचे और वहां उसके द्वारा इस प्रकार लज्जित किये जाने पर कि—

> अस्थि चर्म मय देह मम, ता में ऐसी प्रीति।
> तिस आधी जौं राम मंह, अवसि मिटति भवभीति॥

ये राम के अनन्य उपासक बन गये। अपने उपास्यदेव भगवान् रामचन्द्र के आदर्श चरित्र का लक्ष्य लेकर इन्होंने भक्ति की जो पवित्र भागीरथी प्रवाहित की उस में अवगाहन कर सहस्रों पतित पावन हो चुके हैं। बात यहां तक प्रसिद्ध है कि 'नभ में न तारे जेते तुलसी ने

तारे हैं।' रामचरितमानस इनका सबसे अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय महाकाव्य है। इसकी रचना अवधी भाषा में दोहे और चौपाइयों में हुई है। इसके अतिरिक्त विनयपत्रिका,गीतावली,कवितावली,रामायण और बरवै रामायण इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। ये वैष्णव धर्म के अनुयायी और रामानन्द द्वारा प्रचारित रामभक्ति के उपासक थे। राम इनके इष्ट देव थे। उनके आदर्श चरित्र का आधार लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक और सम्पूर्ण समीक्षा इन्होंने की है उतनी हिन्दी साहित्य में अन्य किसी कवि ने नहीं की। रामचरित-मानस में काव्य के सभी उत्कृष्ट कोटि के गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। भाषा पर गोस्वामीजी को असाधारण अधिकार था फिर भी उसमें सरसता और सरलता का पूरा ध्यान रखा गया है। भारतीय जीवन और भारतीय संस्कृति के वे सर्वश्रेष्ठ चित्रकार हैं। इनकी मृत्यु सं० १६८० में काशी में गंगा के तीर असी घाट पर हुई जैसा कि निम्न दोहे में प्रसिद्ध है:—

संवत् सोरह सौ असी असी गंग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर॥

६—मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी का जन्म संवत् १६५३ में झाँसी मण्डल के चिरगाँव नामक स्थान में एक सम्पन्न वैश्य घराने में हुआ था। उनके पिता का नाम सेठ रामचरण था। वे परम धार्मिक और रामभक्त थे। गुप्तजी ने राम की भक्ति पैतृक सम्पत्ति के रूप में ही प्राप्त की है। इनके छोटे भाई श्री सियाराम शरण भी एक उच्च कोटि के कवि हैं। गुप्तजी वर्तमान समय के सब से अधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय कवि

हैं। हिन्दी के आप ही सर्वप्रथम कवि हैं जिन की रचना में खड़ी बोली का शुद्ध और परिमार्जित रूप दिखाई देता है। जीवन पर सत्प्रभाव डालने वाले अनेक खण्ड काव्यों की रचना इन्होंने की है जिनमें रङ्ग में भंग, जयद्रथवध, पंचवटी, यशोधरा, द्वापर, त्रिपथगा तथा सिद्धराज अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में 'भारत भारती' बहुत प्रचलित है। 'साकेत' इनका महाकाव्य है। यह ग्रन्थ हिन्दी काव्य जगत् में अद्वितीय है। इस पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से इन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिल चुका है। इनके काव्य में भारत के प्राचीन गौरव की छटा विद्यमान रहती है। इनकी कल्पना उदात्त और कोमल होती है। सुकुमार भावों की अभि-व्यक्ति में आप अत्यन्त निपुण हैं। इनकी भाषा सरल तथा प्रांजल है। इनकी ओजपूर्ण लेखनी ने राष्ट्रीय चेतना और जागृति उत्पन्न करने में बहुत सहयोग दिया है।

१०—अयोध्यसिंह उपाध्याय

आपका जन्म संवत् १६२२ में आजमगढ़ मण्डल के निजामा-बाद नामक कस्बे में हुआ था। प्रारम्भिक जीवन में आप सरकारी कानूनगो के पद पर काम करते थे। वहाँ से पेंशन प्राप्त करने के अनन्तर आप काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक नियुक्त हुए और अनेक वर्षों तक इस पद पर आसीन रहे। काव्य जगत् में आप 'हरिऔध' नाम से विख्यात थे। ये खड़ीबोली के उन प्रारम्भिक कवियों में थे जिन्होंने अपनी रचनाओं से ये सिद्ध कर दिखाया कि खड़ी बोली में भी ब्रजभाषा के समान ही उच्चकोटि की कविता की जा सकती है। इनका 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली का एक उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है। इसमें उपाध्याय जी ने कोमल भावों की बड़ी मधुर अभिव्यंजना

UDAIPUR.

की है। संस्कृत के अतुकान्त छन्दों में इसकी रचना हुई है और भाषा भी संस्कृत-प्रचुर है। इसके अतिरिक्त उपाध्याय जी ने बोलचाल की सरल भाषा में भी कविता की है और उसमें मुहावरों तथा कहावतों का भी बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है। खड़ी बोली के कवियों में तो आपका स्थान बहुत ऊँचा है ही, आपकी ब्रजभाषा की रचनायें भी बड़ी उच्चकोटि की हैं। प्रियप्रवास के अतिरिक्त रसकलश, बोलचाल, चुभते चौपदे, चोखे चौपदे, और ठेठ हिन्दी का ठाठ आदि इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। कुछ वर्ष हुए आपका स्वर्गवास हो गया।

११—जयशंकर प्रसाद

प्रसाद जी का जन्म संवत् १९४६ में काशी में हुआ था। इनके पिता देवीप्रसाद जी काशी के एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। प्रसाद जी ने अपना पैतृक व्यवसाय करते हुए भी साहित्य का विशाल अध्ययन और मनन किया था। कविता की ओर आपकी रुचि प्रारम्भ से ही थी। प्रारम्भ में ये ब्रजभाषा की कविता करते थे किन्तु पीछे खड़ीबोली में आपने विशेष ख्याति प्राप्त की। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इसीसे इन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की और वह भी बड़ी सफलता के साथ। काव्य में आप रहस्यवाद और छायावाद की नवीन प्रगति के जन्मदाता माने जाते हैं। इनकी कविता भावप्रधान है यद्यपि इनकी प्रारम्भिक कविताओं में आख्यानों की अभिव्यक्ति पाई जाती है। उसमें प्रेम तथा सौंदर्य की बड़ी मनोहर अभिव्यंजना हुई है। आपकी भाषा संस्कृति प्रचुर तथा क्लिष्ट है किन्तु उसमें लालित्य की कमी नहीं है। काननकुसुम, झरना, आंसू, लहर, श्रद्धा और कामायनी इनके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं। कामायनी एक उच्च कोटि का महाकाव्य

और हिन्दी साहित्य का अमूल्य रत्न है। इस पर आपकी मृत्यु के अनन्तर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से आपके पुत्र को मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया गया था। भारतेन्दु के बाद हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककार आप ही माने जाते हैं। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ और अजातशत्रु आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। आपने उपन्यास और कहानियां भी लिखी थीं। उपन्यासों में तितली और कंकाल तथा कहानी संग्रहों में आंधी और प्रतिनिधि प्रसिद्ध हैं। संवत् १९९४ में काशी में आपका स्वर्गवास हो गया।

१२—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

निराला जी का जन्म संवत् १९५५ में बङ्गाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल नामक एक छोटी सी रियासत में हुआ था। इनकी मातृभाषा बंगला है। ये बड़े ही अध्ययनशील हैं। प्रारम्भ में ये बंगला की रचना करते थे किन्तु पीछे इन्होंने हिन्दी सीखी और उसमें भी कविता करने लगे। छायावाद के श्रेष्ठतम कवियों में इनकी गणना है। ये बड़े ही उदार तथा स्वच्छन्द प्रकृति के हैं और इसका प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी पड़ा है। हिन्दी में स्वच्छन्द छन्दों की रचना का प्रवर्तन इन्होंने ही किया है। आपने परम्परागत रूढ़ियों को अस्वीकार कर निराला ही मार्ग अपनाया इसी से आप निराला नाम से प्रसिद्ध हुए। आपकी कल्पना बड़ी उदात्त और गम्भीर होती है। भाषा संस्कृत-बहुल तथा क्लिष्ट है। काव्य के अतिरिक्त आपने उपन्यास, कहानी और निबन्ध भी लिखे हैं। अनामिका, परिमल और गीतिका आपके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। तुलसीदास नामक एक खण्ड काव्य भी आपने लिखा है।

१३—सुमित्रानन्दन पन्त

इनका जन्म संवत् १९५८ में अल्मोड़े में हुआ था। बचपन से

प्रकृति की गोद में लालन पालन होने से प्रकृति से आपका आकर्षण और प्रेम स्वाभाविक है। काव्य जगत् में आप छायावादी कविता के आचार्य माने जाते हैं। आपकी कविता में सौन्दर्य, मधुरता और विराट की अनुभूति की झलक मिलती है। आपकी कल्पना बड़ी ही सुकुमार और वर्णन सजीव होते हैं। कोमल कान्त पदावली के लिये आप अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। भाषा में माधुर्य और संगीत का लालित्य है। काव्य में इन्होंने शब्दों और छन्दों की नूतन अवतारणा तथा भावों की विविधता का प्रचार किया है। ये प्रकृति के अनन्य उपासक तथा सौन्दर्य जगत के भावुक कवि हैं। पल्लव, वीणा, उच्छ्वास, ग्रन्थि गुञ्जन, युगवाणी, ज्योत्स्ना और युगान्त इनकी प्रसिद्ध रचनाये हैं।

१४—पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

'नवीन' जी का जन्म संवत् १९५४ में ग्वालियर राज्य के शाजापुर स्थान में हुआ था किन्तु अनेक वर्षों से ये कानपुर में रहते हैं। वहीं स्वर्गीय श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के संरक्षण में आपने सम्पादन कला की शिक्षा पाई और इस क्षेत्र में अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की। आप दैनिक 'प्रताप' के सम्पादक हैं। राष्ट्रीय क्षेत्र में भी आप की कीर्ति समस्त देश में व्याप्त है। इस समय आप भारतीय विधान परिपद् के प्रमुख सदस्य हैं। हिन्दी कविता की नवीन धारा में आपका एक विशिष्ट स्थान है। ये राष्ट्रीय धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। राष्ट्रीय जीवन की असफलताओं, उसके संघर्ष और क्रन्दन का प्रभाव यदि किसी कवि पर पूर्ण रूप से पड़ा है तो वह नवीनजी की कविताओं में ही परिलक्षित होता है। ये मस्त कवि हैं और इनकी वाणी में निर्बंध स्वतन्त्रता की भावना गूंजती रहती है। भाषा संस्कृत प्रचुर है किन्तु

बड़ी ही प्राञ्जल, मधुर और सरस है। आपकी कविताओं का संग्रह 'कुंकुम' नाम से प्रकाशित हुआ है।

१५—सुश्री महादेवी वर्मा

आप का जन्म संवत् १९६५ में इन्दौर में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय से इन्होंने संस्कृत में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की और इस समय प्रयाग महिला विद्यालय की प्रिंसिपल हैं। आप का अध्ययन विशाल है तथा आप अत्यन्त सहृदय एवं मृदुभाषिणी हैं। आधुनिक कवियों में आपका स्थान बहुत ऊंचा है। आपकी ज्योतिर्मयी प्रतिभा से हिन्दी काव्य की श्रीवृद्धि हुई है। आपकी कविता में वेदना की पीड़ा और गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति है तथा कल्पना एवं अनुभूति हृदयग्राहिणी है। भाषा संस्कृतप्रचुर एवं संगीतपूर्ण है। आपके गीतों के संग्रह 'नीरजा' पर आपको सम्मेलन की ओर से ५००) रुपये का सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त हुआ है। नीहार, रश्मि, नीरजा और सान्ध्य गीत आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। कविता के अतिरिक्त गद्य साहित्य के सृजन में भी आपने पर्याप्त ख्याति पाई है।

१६—डा० रामकुमार वर्मा

आपका जन्म संवत् १९६२ में मध्यप्रदेश के सागरमण्डलान्तर्गत विलासपुर में एक सम्पन्न कायस्थ कुल में हुआ था। आपकी माता तुलसीकृत रामचरितमानस की बड़ी भक्त थीं। उन्हीं के संसर्ग से वर्मा जी में भी हिन्दी की ओर रुचि हुई। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी की एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की और नागपुर से पीएच० डी०। एम० ए० उत्तीर्ण करने के अनन्तर तत्काल ही आप प्रयाग

विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक नियुक्त हो गये और तब से अब तक वहीं है। सन् १९४७ से ४८ तक आप मध्यप्रान्त में शिक्षा विभाग में डिपुटी डाइरेक्टर रहे। आप बचपन से ही प्रतिभाशाली कवि तथा लेखक हैं। आप के अनेक काव्य ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिन में अभिशाप, निशीथ, रूपराशि, चित्तौड़ की चिता और चित्ररेखा प्रसिद्ध हैं। कबीर पर आपने कबीर का रहस्यवाद नामक एक सुन्दर गवेषणा-पूर्ण पुस्तक लिखी है। साहित्य समालोचना तथा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास आपके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। कविता के साथ साथ आपने अनेक एकांकी नाटक भी लिखे हैं। हिन्दी एकांकी के आप प्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी कविता करुण-रस प्रधान है। उसमें उदात्त कल्पना तथा सुन्दर भाव-चित्रण है। भाषा आपको सरस, सरल तथा स्पष्ट है।

१७—रामधारीसिंह दिनकर

आप मुङ्गेर के निवासी हैं और आजकल पटना के एक विद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। इसके पूर्व आप बिहार सरकार के रजिस्ट्री विभाग में सब रजिस्ट्रार के पद पर कार्य करते थे। आधुनिक काल में नवयुवक कवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। इनमें राष्ट्रीय भावना और देश-प्रेम कूट कूट कर भरा है। प्रारम्भ में महात्मा गांधी के उपदेशों से प्रभावित हो कर इन्होंने बहुत दिनों के भूले हुए देहातों की ओर अपनी कविता का रुख मोड़ कर काव्य-क्षेत्र में एक नये मार्ग का प्रदर्शन किया। देश के विगत वैभव का गान और भविष्य के स्वर्ण विहार का स्वप्न आप की कविताओं के प्रिय विषय हैं। राष्ट्र के अतीत के साथ अन्तर की पीड़ा का संयोग स्थापित कर आप ने कविता में एक अपूर्व ओज और करुणा का संचार किया है। आप कल्पना,

जोश, उमंग और स्वप्नों के कवि हैं। रेणुका और हुँकार आप की कविताओं के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके है।

१८—गुरुभक्तसिंह

इनका जन्म वलिया में हुआ है। हिन्दी काव्य जगत में आपकी ख्याति नूरजहां नामक प्रवन्ध काव्य के द्वारा हुई है। ये प्रकृति के प्रेमी और भाव चित्रण में कुशल कवि हैं। इनकी कविता में सरलता और दृष्यों का मनोरम चित्रण है। अभी कुछ दिन हुए तव 'विक्रमादित्य' नामक आपका एक नवीन काव्य भी प्रकाशित हुआ है। आपकी भाषा में सरलता तथा प्रवाह है।

प्रथम खण्ड

ब्रज-निकुञ्ज

सूरदास

(१)

मेरो मन अनत कहां सचु पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै ॥
कमल नैन को छांड़ि महातम, और देव को ध्यावै ?
परम गङ्ग को छांड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै ॥

(२)

जा पर दीनानाथ ढरै ।
सोइ कुलीन बड़ो सोइ सुन्दर जिन पर कृपा करै ॥
राजा कौन बड़ो रावण तें गर्वहि गर्व गरै ।
रंकव कौन सुदामा हू ते आपु समान करै ॥
रूपल कौन अधिक सीता तें जनम वियोग भरै ।
अधिक कुरूप कौन कुबजा ते हरि पति पाइ वरै ॥
जोगी कौन बड़ो संकर ते ताको काम छरै ।
कौन विरक्त अधिक नारद सों निसिदिन भ्रमत फिरै ॥
अधम सु कौन अजामिल हू ते जम जहं जात डरै ।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु फिरिफिरि जठर जरै ॥

(३)

हम भक्तन के भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिग्या मेरी, यह व्रत टरत न टारै ॥

भक्तै काज लाज हिय धरिकै, पांई पयादे धाऊं ।
जहं जहं भीर परै भक्तन पै, तहं तहं जाइ छुड़ाऊं ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो ।
देखि विचार भक्त-हित कारन, हांकत हौ रथ तेरो ॥
जीते जीति भक्त अपने की, हारे हारि विचारों ।
सूरदास सुनि भक्त-विरोधी, चक्र सुदर्सन जारौं ॥

(४)

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊं ।
तौ लाजौ गङ्गा जननी को सान्तनु-सुत न कहाऊं ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौ, कपिध्वज सहित बुलाऊं ।
इती न करौं शपथ तौ हरि की, छत्रिहि-गतिहि न पाऊं ॥
पांडव दल सन्मुख ह्वै धाऊं, सरिता रुधिर बहाऊं ।
सूरदास रन विजय-सखा कों जियत न पीठ दिखाऊं ॥

(५)

हों एक बात नई सुनि आई ।
महरि जसोदा ढोटा जायो घर घर होत बधाई ॥
द्वारे भीर गोप गोपिन की महिमा बरनि न जाई ।
अति आनन्द होत गोकुल में, रतन भूमि सब छाई ॥
नाचत तरुन वृद्ध अरु बालक, गोरस कीच मचाई ।
सूरदास स्वामी सुखसागर सुन्दर स्याम कन्हाई ॥

(६)

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ॥

मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न वेगि सों आवत, तोमों कान्ह बुलावै ।
कवहुं पलक हरि मूंद लेत हैं कवहूं अधर फरकावै ॥
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ, सो नन्द-भामिनि पावै ॥

(७)

चलत देखि जसुमति सुख पावै ।
ठुमुक ठुमुक धरनी धर रेंगत जननिहि खेल दिखावै ॥
देहरी लौं चलि जात बहुरि फिरि फिरि इतही को आवै ।
गिरि गिरि परत बनत नहिं नाघत सुरमुनि सोच करावै ॥
कोटि ब्रह्मांड करत छिन भीतर हरत बिलंब न लावै ।
ताको लिये नन्द की रानी नाना रूप खिलावै ॥
तव जसुमति कर टेकि स्याम को क्रम क्रम कै उतरावै ।
सूरदास प्रभु देखि देखि कै सुर नर वुद्धि भुलावै ॥

(८)

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुट्टरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि लेप किए ॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक किए ।
लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिए ॥
कठुला कंठ वज्र केहरि-नख राजत रुचिर हिए ।
धन्य 'सूर' एको पल या सुख का सत कल्प जिए ॥

(६)

चोरी करत कान्ह धरि पाये ।
निसि बासर मोहिं बहुत सतायो, अब हरि हाथहिं आये ।
माखन दधि मेरो सब खायो, बहुत अचगरी कीन्ही ।
अब तो फन्द परे हौ लालन, तुम्हें भले मैं चीन्हों ।।
दोउ भुज पकरि कह्यो, कित जैहौ, माखन लेऊं मंगाई ।
तेरी सौ मैं नेकु न चास्यो, सखा गये सब खाई ।।
मुख तन चितै बिहँसि हँसि दीनो, रिस तब गई बुझाई ।
लियौ उर लाइ ग्वालिनी हरि कौं, सूरदास बलि जाई ।

(१०)

जसोदा कहाँ लौ कीजै कानि ।
दिन प्रति कैसे सही परत हैं दूध दही की हानि ।।
अपने या बालक की करनी जो तुम देखौ आनि ।
गोरस खाइ ढूंढ सब बासन, भली करी यह बानि ।।
मैं अपने मन्दिर के कोने माखन राख्यो जानि ।
सोइ जाइ तुम्हारे लरिका लीनो है पहिचानि ।।
बूझी ग्वालिन घर में आयों नेकु न संका मानी ।
सूर स्याम तब उतर बनायो चीटी काढनु पानी ।

(११)

मैया ! मैं नाही दधि खायो ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ।।
देखि तुही सीके पर भाजन ऊंचे घर लटकायो ।
तुहीं निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे धरि पायो ।

मुख दधि पोंछि कहत नंदनंदन दोना पीठि दुरायो ।
डारि साँट मुसकाय तबहिं गहि सुत को कण्ठ लगायो ॥
बाल-विनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप देखायो ।
सूरदास प्रभु जसुमति के सुख सिव विरंचि बौरायो ॥

(१२)

आज मैं गाय चरावन जैहों ।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल आपन कर मैं खैहों ॥
ऐसी अबहिं कहो जनि बारे देखौं अपनी भांति ।
तनक तनक पायन चलिहौ कस आवत ह्वै है राति ॥
प्रात जात गैया लै चारन घर आवत सांझ ।
तुम्हरो कमल वदन कुम्हिलैहैं रेंगत घामहि मांझ ॥
तेरी सौं मोहि घामु न लागत भूख नही कछु नेक ।
सूरदास प्रभु कह्यो न मानत परे आपनी टेक ॥

(१३)

मैया ! मैं न चरैंहौ गाइ ।
सिगरे वाल घिरावत मोसों मेरे पाँइ पिराइ ॥
जो न पत्याहि पूंछि वलदाउहि अपनी सौंह दिवाइ ।
यह सुनि सुनि जसुमति ग्वालनि को गारी देत रिसाइ ॥
मैं पठवति अपने लरिका को आवै मन वहलाइ ।
सूर स्याम मेरो अति वालक मारत ताहि रिंगाइ ॥

(१४)

करि मन नंदनंदन ध्यान ।
सेइ चरन सरोज सीतल, तजि विषै रस-पान ॥

(३८)

जानु जंघ त्रिभंग सुन्दर, कलित कंचन-दण्ड।
काछनी कटि पीत पट्ट दुति, कमल केसर खण्ड॥
तनु मराल प्रवाल छैनी किंकिनी-कल - राउ।
नाभि हृदय रोमावली अलि, चले सैन सुभाउ॥
कण्ठ मुक्तामाल मलयज उर वनी. वनमाल।
सुरसरी के तीर मानों लता स्याम तमाल॥

(१५)

नैन भये वोहित के काग।
उड़ि उड़ि जात पार नहीं पावै, फिरि आवत तिहि लाग॥
ऐसी दशा भई री इनकी, अब लागे पछतान।
मो वरजत वरजत उठि धाए, नहि पायो अनुमान॥
वह समुद्र ओछे वासन ये, धरैं कहाँ सुखरासि।
सुनहुं सूर ये चतुर कहावत, वह छवि महा प्रकासि॥

भ्रमर-गीत

(१६)

हरि गोकल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपंगसुत मोहनि विसरत ब्रजवासी सुखदाई॥
यह चित होत जाऊं मैं अवही, यहाँ नही मन लागत।
गोपी ग्वाल गाइ वन चारन अति दुख पायो त्यागत।
कहँ माखन रोटी कहँ जसुमति जेवहु कहि कहि प्रेम॥
सूर श्याम के वचन हँसत सुनि थापत अपनो नेम।

(१७)

उधौ हम आज भईं बड़ भागी ।
जिन अंखियन तुम श्याम विलोके ते अंखियाँ हम लागीं ।।
जैसे सुमन वास लै आवत पवन मधुप अनुरागी ।
अति आनन्द होत है तैसे अंग अंग सुख रागी ।।
ज्यों दरपन में दरसत देखत दृष्टि परम रुचि लागी ।
तैसे सूर मिले हरि हमको विरह व्यथा तनु त्यागी ।।

(१८)

आये जोग सिखावन पांडे ।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों वनजारे टाँडे ।।
हमरी गति पति कमलनयन लौं जोग सिखैं ते राँडे ।
कहो मधुप, कैसे समायेंगे एक म्यान दो खांडे ।।
कहु पटपद कैसे खैयतु है हाथिन के संग गांडे ।
काकी भूख गई वयारि भखि विना दूध घृत मांडे ।।
काहे को झाला लै मिलवत कौन चोर तुम डांडे ।
सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया, धान, कुम्हांडे ।।

(१६)

उधौ जोग विसरि जनि जाहु ।
बांधहु गांठ कहूं जनि छूट फिर पाछे पछिताहु ।।
ऐसी वस्तु अनूपम मधुकर मरम न जानै और ।
ब्रजवासिन के नाहिं काम को तुम्हरे ही है ठौर ।।
जो हरि हित कर हमको पठयो सो हम तुमको दीन्हीं ।
सूरदास नरियर ज्यों विष के करुई वन्दना कीन्हीं ।।

(२०)

ऊधौ व्रज की दसा विचारो ।
ता पाछे है रिद्ध आपनो जोग कथा विसतारो ॥
जेहि कारन पठये नंदनन्दन सो सोचहु मन मांही ।
केतक बीच विरह परमारथ जानत हो किधौ नाहीं ॥
तुम निज दास जो सखा स्याम के सतत निकट रहत हो ।
जल बूडत अवलम्ब फेन को फिरि फिरि कहा गहत हो ॥

(२१)

अँखियाँ हरि दरसन की भूखी ।
अब कैसे रहति स्याम रंगराती ए बाते सुन रूखी ॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ए इत्यो नहिं भूखी ।
इते मान इहि जोग सदेसन सुनि अकुलानी दूखी ॥
सूर सकत हठ नाव चलावत ए सरिता है सूखी ।
वारक यह मुख आनि दिखावहु दुहि पै पिवत पतूखी ॥

(२२)

रे मधुकर कहा सिखावन आयो ।
ये तो नैन रूप रस राँचे कह्यो न करत परायो ॥
जोग जुगति हम कछू न जानें ना कछु ब्रह्मज्ञानी ।
नवकिशोर मोह मृदु मूरति तामो मन उरझानी ॥
भली करी तुम आये ऊधौ देखो दसा विचारी ।
दाइ उपाय मिलाइ सूर प्रभु आरति हरहु हमारी ॥

(२३)

ऊधौ मन तो एकै आहि ।
सो तो वै हरि संग सिधारे जोग सिखावत काहि ॥

सुनें सठ कुटिल वचन रस लम्पट अवलन तन धौं चाहि।
अब काहे को लोन लगावत विरह अनल तन दाहि ॥
परमारथ उपचार करत ही विरह व्यथा है जाहि।
जाको राजरोग कफ वाढ़्यो दह्यो खवावत ताहि ॥
सुन्दर श्याम सलौनी मूरति पूरि रही हिय मांहि।
सूर ताहि तजि निर्गुन सिंधुहि कौन सकै अवगाहि ॥

(२४)

ऊधो मोहि व्रज विसरत नाही।
ब्रिन्दावन गोकुल तन आवत अरु सघन तृनन की छांही।
प्रात समय माता जसुमति अरु नन्द देख सुख पावत ॥
माखन रोटी दह्यो सजायो अतिहित साथ" खवावत।
गोपी ग्वाल वाल संग खेलत सब दिन हंसत सिरात।
सूरदास धनिधनि व्रजवासी जिनसों हंसत व्रजनाथ ॥

(२५)

नैना भये अनाथ हमारे।
मदनगोपाल यहां ते सजनी सुनियत दूर सिधारे ॥
वे जलधर हम मीन वापुरी कैसे जिवहि निनारे।
हम चातक चकोर श्याम घन वदन सुधानिधि प्यारे ॥
मधुबन वसत आस दरसन की जोई नैन मग हारे।
सूर श्याम करी पिय एती मृतकहु ते पुनि मारे ॥

(२६)

नाथ अनाथन की सुधि लीजै।
गोपी ग्वाल गाइ गोकुल सब दीन मलीन दिनहि दिन छीजै ॥

नैन सजल धारा.वाढ़ी अति बूडत व्रज किन कर गहि लीजै ।
इतनी विनती सुनहु हमारी वदरक हूँ पतियां लिख दीजै ॥
चरन कमल दरसन नवनौका करुनासिंधु जगत जसु लीजै ।
सूरदास प्रभु आस मिलन की, एकबार आवन व्रज कीजै ॥

(२७)

रे मन मूरख जन्म गंवायो ।
करि अभिमान विषय रस रांच्यो, स्याम सरन नहिं आयो ॥
यह संसार फूल सेमर को सुन्दर देखि भुलायो ।
चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि हाथ कछू नहिं आयो ।
कहा भयो अब के मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो ।
कहत सूर भगवन्त भजन बिनु सिर धुनि धुनि पछितायो ।

(२८)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै ।
ता दिन तेरे तन–तरुवर के सबै पात झरि जैहैं ॥
घर के कहैं, वेगि ही काढो, भूत भये कोउ खैहै ।
जा प्रीतम सो प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहै ॥
कहं वह ताल, कहां वह शोभा, देखत धूरि उड़ैहै ।
भाइ बन्धु अरु कुटुम्ब कवीला, सुमिरि सुमिरि पछितैहै ।
विनु गोपाल कोउ नहिं अपनो, जस अपजसु रहि जैहै ।
जो सूरज दुर्लभ देवन को, सत संगत में पैहै ॥

मीरा

(१)

वसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनि मूरति, सांवरी सूरति, नैना बने विसाल ॥
मोर मुकुट मकराकृति कुण्डल, अरुन तिलक दिये भाल।
अधर-सुधा रस मुरली राजत, उर वैजंती माल ॥
छुद्र घंटिका कटि-तट सोभित नूपुर-शब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भगत-वछल गोपाल ॥

(२)

दरस विन दूखन लागे नैन।
जवके तुम विछुरे प्रभु मोरे, कवहु न पायो चैन ॥
शब्द सुनत मेरी छतियां कांपै मीठे मीठे वैन।
कल न परत पल हरिमग जोवत भई छमासी रैन ॥
विरह कथा कासूं कहूं सजनी वह गई करवत ऐन।
मीरा के प्रभु कवरे मिलोगे दुख मेटण सुख दैन ॥

(३)

नहिं ऐसो जन्म वारम्वार।
का जानूं, कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ॥
वढ़त पल पल, घटत छिन छिन, जात न लागै वार।
विरछ के ज्यों पात टूटे वहुरि न लागै डार ॥

भौसागर अति जोर कहिए, अनन्त ऊंडी धार ।
रामनाम का बांध वेड़ा, उतर परले पार ॥
ज्ञान-चौसर मंडी चोहटे, सुरत पासा-सार ।
या दुनियां में रची वाजी, जीत भावें हार ॥
साधु सन्त महन्त ज्ञानी, चलत करत पुकार ।
दासि मीरां लाल गिरधर जीवणा दिन चार ॥

(४)

हेली मैं तो दरद-दिवाणी हो,
मेरो दरद न जानै कोइ ।
घाइल की गति घाइल जानै, और न जाणै कोइ ।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवणा किस विधि होइ ॥
सुख सम्पति सब मिलि आवै, दुख में वलभ न कोइ ।
मीरा के प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद रमइयो होइ ॥

(५)

राम नाम रस पीजै मनुआं राम नाम रस पीजै ।
तज कुसंग सतसंग वैठ नित हरि चरचा सुन लीजै ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कू चित से वहाय सु दीजै ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, तिन्ह के रंग में भीजै ॥

(६)

कोई कहियो रे प्रभु आवन की,
आवन की मन भावन की,

वै नहिं आवै लिख नहिं भेजै वान परी ललचावन की।
ए दोउ नैन कह्यो नहिं मानै नदियां वहै जैसे सावन की।
कहा करूं, कछु वस नहिं मेरो पाख नही उड़जावन की।
मीरां के प्रभु कवरे मिलोगे चेरी भई तो दावनं की॥

(७)

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूं लिख भेजूं रे पाती।
स्याम सनेसो कवहु न दीन्हो जानि वूझ गुझवाती।
डगर वुहारूं पंथ निहारूं जोइ जोइ अंखियां राती॥
राति दिवस मोहि कल न परत है हियो फटत मेरी छाती।
मीरां के प्रभु कवरे मिलोगे पुरव जनम के साथी॥

(८)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड्या वन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साधु संग वैठि वैठि लोक लाज खोई॥
भगत देखि राजी भई जगत देख रोई।
अंसुवन जल सीच सीच प्रेम वेलि वोई॥
दधि मथि घृत काढि लियो डार दई छोई।
राणा विष प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अव तो वात फैल गई जाणै सव कोई।
मीरा पीय लगन लागी होगी होय सो होई॥

रसखान

मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन ।
जो पसु हौं कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौ मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥१॥ *

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं ।
आठहुं सिद्धि नवोनिधि को सुख, नंद की गाइ चराइ बिसारौं ॥
इन आंखिन सों रसखान कबौं, ब्रज के बन बाग-तड़ाग निहारौ ।
कोटिक हौं कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं ॥२॥ •

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुञ्जन माल गरे पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी वन गोधन ग्वालनि सङ्ग फिरौंगी ॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वांग भरौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की अधरान-धरी अधरान धरौंगी ॥३॥

गावैं गुनी गनिका गंधर्व औ सारद सेस सबै गुन गावैं ।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं ॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं ॥४॥ *

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ॥
नारद से सुक ब्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं ॥५॥

धूरि भरे अति सोभति स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अंगना पग पैजनि बाजती, पीरी कछोटी ॥

वा छवि को रसखानि विलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी ।
काग के भाग कहा कहिए, हरि हाथ सों ले गयो माखन रोटी ॥६॥

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहूँ तू न गई वह ठैयां ।
या ब्रज में सगरी वनता सव वारति प्राननि लेत वलैयां ॥
कोऊ ना काहु की कानि करै, कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया ।
गाइगो तान जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ॥७॥

ब्रह्म में ढूंढ्यो पुरानन गाइन, वेदरिचा सुनि चौगुने चायन ।
देख्यो सुन्यों कवहूँ न कितू वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन ॥
टेरत हेरत हारि परयो रसखानि वतायो न लोग लुगायन ।
देख्यो दुर्यो वह कुंज कुटीर में वैठ्यो पलोटत राधिका पायन ॥८॥

द्रौपदि औ गनिका गज गीध अजामिल से कियो सो न निहारो ।
गौतमगेहिनी कैसे तरी, प्रहलाद को कैसे हर्यो दुख भारो ॥
काहे को सोच करे रसखानि, कहा करि है रविनंद विचारो ।
कौन सीं संक परि है जु माखन-चाखनहारो है राखनहारो ॥९॥

प्रान वही जो रहैं रिझवा पर रूप वही जिन वाही रिझायो ।
सीस वही जिन के परसे पद अंग वही जिन वा परसायो ॥
दूध वहीं जो दुहायो री वाही दही सु वही जो वहीं ढरकायो ।
और कहां लौं कहों रसखानि री भाव वही जो वही मन भायो ॥१०॥

कहा रसखानि सुख सम्पति सुमार महँ,
कहा महाजोगी ह्वै लगाये अंग छार को ।
कहा साधे पंचानल, कहा सोये वीच जल,
कहा जीत लाये राजा सिंधु वारपार को ॥

जप बारबार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
सोई है गंवार जिहि कीन्हों नहीं प्यार, नहीं,
सेयो दरबार यार नन्द के कुमार को ॥११

कंचन के मन्दिर में दीठि ठहराति नाहि,
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सौं।
और प्रभुताई अब कहां लौं बखानौं,
प्रतिहारिन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं॥
गङ्गा में नहाई मुक्ताहल हू लुटाइ, वेद
बीस बार गाइ ध्यान कीजत सकारे सौं।
ऐसे ही भये तौ कहा कीनौं रसखानि जोपै,
चित्त दै न कीन्हीं प्रीति पीतपट वारे सों ॥१२॥

प्रेमवाटिका

या छवि पै रसखानि अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविनु नहिं पाई रहे सु खोज ॥१॥
प्रेम-अयनि श्री राधिका प्रेम-बरन नँद-नन्द।
प्रेमवाटिका के दोऊ माली मालिन द्वन्द ॥२॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥३॥
प्रेम अगम, अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि जात नहीं रसखान ॥४॥

कमल तन्तु सो छीन अरु कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि प्रेम पंथ अनिवार ॥५॥
शास्त्रन पढ़ि पण्डित भये, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान ॥६॥
काम क्रोध मद मोह भय लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सवही ते प्रेम है परे कहत मुनिवर्य ॥७॥
विनु गुन जोवन रूप धन, विन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना तें रहित प्रेम सकल रसखानि ॥८॥
अति सुन्दर कोमल अतिहि अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सवते सदा नित इकरस भरपूर ॥९॥
जग में सब जान्यो परै अरु सब कहैं कहाय।
पै जगदीस अरु प्रेम यह दोऊ अकथ लखाय ॥१०॥
दम्पति सुख अरु विषय रस पूजा निष्ठा ध्यान।
इनतें परे बखानिए शुद्ध प्रेम रसखान ॥११॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सविसेह ॥१२॥
इक अंगी विनु कारनहिं, इक रस सदा समान।
गनै पियहिं सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान ॥१३॥
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहिकैं प्रेम बखानैं सोय ॥१४॥
प्रेम हरी को रूप है त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होई द्वै में बसै, ज्यों सूरज अरु धूप ॥१५॥

जग में सबतें अधिक अति ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहू ते अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥१६॥
हरि के सब आधीन पै हरी प्रेम आधीन।
याही ते हरि आपुही याहि बड़प्पन दीन ॥१७॥

भूषण

दसरथ जी के राम भे, बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रकटे साहि के, श्री सिवराज भुवाल ॥१॥
उदित होत सिवराज के, मुदित भये द्विजदेव।
कलयुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव ॥२॥
जादिन जन्म लीन्हों भूपर भुसिल भूप।
ताहि दिन जीत्यो अरि उर के उछाह को।
छठी छत्रपतिन को जीत्यो भाग अनायास,
जीत्यो नामकरन मे करन-प्रवाह को,
भूपण भनत, बाललीला गढ कोट जीत्यो,
सहि के सिवा जी, करि यहूं चक्क चाह को।
बीजापुर गोलकुण्डा जीत्यो लरिकाई में,
ज्वानी आए जीत्यो दिल्लीपति पातसाह को ॥३॥
जा पर साहि तनै सिवराज सुरेस की ऐसी सभा सुभ साजे।
यों कवि भूपण जंपत है लखि संपति को अलकापति लाजै॥
जा मधि तीनहु लोक की दीपति ऐसो बड़ो गढराज विराजै।
वारि पताल सी मांची मही अमरावति की छवि ऊपर छाजै ॥४

19178 ..
JAIPUR.

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ मे राजही।
लखि जच्छ किन्नर असुर सुर गंधर्व हौंसनि साजही॥
उत्तुंग मरकत मन्दिरन मधि वहु मृदग जु वाजही।
घन-समै मानहु घुमरि करि घनपटल गल गाजही॥५॥

भूषण भनत जहं परसि कै मनि पुहुपरागन की प्रभा।
प्रभु पीतपट की प्रगत पावस सिंधु मेघन की सभा॥
मुख नागरिन के राजही कहुँ फटिक महलन संग मै।
विकसत कोमल कमल मानहुँ अमल गंग तरंग म॥६॥

आनन्द सो सुन्दरिन के कहुँ वदन इन्दु उदोत हैं।
नभ सरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल कुल होत हैं॥
कहुँ वावरी सर कूप राजत वद्ध-मनि सोपान हैं।
जहँ हस सारस चक्रवाक विहार करत सनान हैं॥७॥

कितहूं विसाल प्रवाल जालन जटित अंगन भूमि है।
जहँ ललित वागनि द्रुमलतनि मिलि रहै झिलमिल भूमि हे॥
चंपा चमेली चारु चंदन चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवंग यलानि केरे लाख हों लगि लेखिए॥८॥

तहँ नृप रजधानी करी, जीति सकल तुरकान।
सिव सरजा रुचि दान में, कीन्हो सुजस जहान॥९॥

साहितनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुन्दुभि वाजे।
भूपन भिच्छुक भीरन को अति भोजहुँ ते वढि मौजनि साजै॥
राजन को गन राजन! को गनै साहिन मैं न इती छवि छाजै।
आजु गरीवनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज विराजै॥१०॥

कुन्द कहा, पयवृन्द कहा, अरु चन्द कहा, सरजा जस आगे ?
भूषन भानु कृसानु कहाव खुमान प्रताप महीतल पागे ?
राम कहा, द्विजराम कहा, वलराम कहा, रण में अनुरागे ?
वाज कहा, मृगराज कहा, अति साहस मैं सिवराज के आगे ॥११॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर, वाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुलराज है।
पौन वारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम—द्विजराज है।
दावा द्रुमदण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
भूषन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है॥
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ वंस पर सेर सिवराज है॥१२॥

ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊंचे घोर मन्दर के अन्दर रहति है।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वै तीन वेर खाती हैं।
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
विजन डुलाती ते वै विजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं॥१३॥

साजि चतुरङ्ग वीर रङ्ग में तुरङ्ग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जङ्ग जीतन चलत हैं।

भूपन भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गैवरन के रलत हैं ॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल गैन,
गजन की ठेल पेल सैल उसलत हैं ॥
तारा सो तरनि घूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥१४॥

विहारीलाल

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परै स्याम हरित दुति होय ॥१॥
सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
इहि बानिक मो मन बसौ, सदा विहारीलाल ॥२॥
सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर ।
मन ह्वै जात अजौं बहै, वा जमुना के तीर ॥३॥
सखि सोहति गोपाल के उर गुञ्जन की माल ।
बाहर लसति मनो पिये, दावानल की ज्वाल ॥४॥
सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात ॥५॥
अधर धरत हरि के परत, ओंठ दीठि पट जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष सी होति ॥६॥
चटक न छाँड़त घटत हूं, सज्जन नेह गम्भीर ।
फीको परै न बरु फटै रंग्यो चोल रंग चीर ॥७॥

नीच हिए हुलसो रहैं गहे गेंद को पोत ।
ज्यों ज्यों माथे मारिये त्यो त्यों ऊचो होत ॥८॥

कवों न श्रोछे नरन सों सरत वड़ेन को काम ।
मढो दमामा जात कहुँ, कहि चूहे के चाम ॥९॥

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं वीच ।
नलवल जल ऊँचो चढै, तऊ नीच को नीच ॥१०॥

वसै वुराइ जासु तन, ताही को सनमान ।
भलो भलो कह छोड़िये खोटे ग्रह जपदान ॥११॥

वड़े न हूजे गुननं विन विरद वड़ाई पाय ।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढो न जाय ॥१२॥

संगत सुमति न पावही परे कुमति के धंघ ।
राखौ मेलि कपूर मे, हींग न होत सुगंध ॥१३॥

नल की अरु नल नीर की एकै गति कर जोय ।
जेतो नीचो ह्वै चलै तेतो ऊँचो होय ॥१४॥

जो चाहै चटक न घटै मैलो होय न मित्त ।
रज राजस न छुआइये, नेह चीकने चित्त ॥१५॥

मति अगाध अति औथरे नदी कूर सर वाय ।
सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास वुझाय ॥१६॥

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय ।
वा खाये बौरात है या पाये बौराय ॥१७॥

जिन दिन देखे ये सुमन गई सु वीति वहार ।
अव अलि रही गुलाब की, अपत कटीली डार ॥१८॥

इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल ।
ह्वैहैं वहुरि वसन्तु ऋतु, इन डारन वे फूल ॥१९॥

अरे हंस या नगर में, जैयो आप विचारि ।
कागनि सों जिन प्रीति करि, कोकिल दई बिडारि ॥२०॥

को कहि सकै वड़ेन सों, लखे वड़े हू भूल ।
दीने दई गुलाब को, इन डारन वे फूल ॥२१॥

स्वारथ सुकृत न स्रमु वृथा, देखु विहंग विचारि ।
वाज पराये पानि पर, तू पंछीहि न मारि ॥२२॥

मरत प्यास पिंजरा परत, सुवा दिनन के फेर ।
आदर दै दै वोलियत, वायस वलि की वेर ॥२३॥

जगत जनायो जो सकल, सो हरि जान्यो नाहिं ।
ज्यों आँखिन सब देखिये, आँखि न देखी जाहिं ॥२४॥

जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन काँचे नाचै वृथा, साँचे रांचै राम ॥२५॥

तौ लगि या मन सदन में, हरि आवैं केहि वाट ।
निकट जरे जौलौं निपट, खुलै न कपट कपाट ॥२६॥

दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईं नहिं भूल ।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कुबूल ॥२७॥

घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन जाचत जाय ।
दिये लोग चसमा चखनि, लघु हू वड़ो लखाय ॥२८॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार ।
मो संपति जदुपति सदा, विपति विदारनहार ॥२९॥

हरि कीजत तुमसों यहै, विनती वार हजार ।
जेहि तेहि भाँति डरो रहो, परो रहो दरवार ॥३०॥
थोरैं ही गुन रीझते, विसराई वह वानि ।
तुमहूं कान्ह मनो भए, आज काल्हि के दानि ॥३१॥
फटु पांखै भखु कांकरैं, सदा परेई संग ।
सुखी परेवा जगत मैं, एकै तुही विहंग ॥३२॥
तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग ।
अनवूड़े वूड़े तरे, जे वूड़े सब अंग ॥३३॥
जात जात बितु होत है, ज्यौं जिय मे सन्तोख ।
होत होत जो होइ तो होइ घरी मैं मोख ॥३४॥
कबको टेरत दीन ह्वै होत न स्याम सहाय ।
तुमहूं लागी जगत गुरु, जग नाइक जगवाय ॥३५॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

अहो हरि, वस अब वहुत भई ।
अपनी दिसि विलोकि करुनानिधि, कीजे नाहि नई ॥
जो हमरे दोपन को देखो, तो न निवाह हमारो ।
करिकै सुरति अजामिल, गज की हमरे करम विसारो ॥
अब नहि सही जाति कोऊ विधि, धीरं सकत नहि धारी ।
हरीचन्द को वेगि धाइकै, भुज भरि लेहु उवारी ॥१॥

प्यारे अब तौ सही न जात ।
कहा करैं कछु बनि नहिं आवत, निसिदिन जिय पछितात ॥
जैसे छोटे पिंजरा में कोउ पंछी परि तड़िपात ।
त्यौंही प्रान परे यह मेरे, छूटन कों अकुलात ॥
कछु न उपाय चलत अति आकुल, मुरि मुरि पछरा खात ।
हरीचन्द खीचों अब कोउ विधि, छाड़ि पाँच औ सात ॥२॥

पियारे, क्यों तुम आवत याद ।
छूटत सकल काज जगके, सब मिटत भोग के स्वाद ॥
जबलौ तुम्हरी याद रहे नहिं, तबलौं हम सब लायक ।
तुम्हरी याद होत ही चित में, चुभत लगन के सायक ॥
हरीचन्द तौ क्यों सब तुम्हरे प्रेमहिं जग में साने ॥३॥

रहै क्यों एक म्यान असि दोय ।
जिन नैनन में हरि रस छायौ तिहिं क्यों भावै कोय ॥
जा तन मन में रमि रहे मोहन, तहां ज्ञान क्यों आवै ।
चाहौ अमृत बात प्रबोधौ, ह्यां को जो पतियावै ॥
अमृत खाइ अब देखि इनारुन, को मूरख जो भूलै ।
हरीचन्द ब्रज को कदली वन, काटौ तौ फिर फूलै ॥४॥

भई सखि ये अंखियां बिगरैल ।
बिगरि परी मानति नहिं, देखैं विना सांवरो छैल ॥
भईं मतवारि घरति पग डगमग, नहिं सूझत कुल गैल ।
तजिकैं लाज साज गुरु जन की, हरि की भईं रखैल ॥
निज घबाव सुनि और हुँ हरखति, करति न कछु मन मैल ।
हरीचन्द सब संग छाँड़ि कैं, करहिं रूप की सैल ॥५॥

सखी ये अति उरझौंहैं नैन।

उरझि परत सुरझ्यो नहिं जानत, सोचत समुझत हैं न ॥
कोऊ नहिं बरजै जो इनको, बनै मत्त जिमि गैन।
हरीचन्द, इन बैरिन पाछै, भय लैन के दैन ॥६।

मरम की पीर न जानै कोय।

कासों कहौं कौन पुनि मानै बैठि रहौं घर रोय ॥
कोऊ जरनि न जाननिवारी, बेमहरम सब लोय।
अपुनी कहत, सुनत नहिं मेरी, कहि समझाऊं सोय ॥
लोक लाज कुल की मरजादा. बैठि रही सब खोय।
हरीचन्द ऐसेहि निबहैगी, होनी होय सो होय ॥७।

अहो इन झूठन मोहि भुलायो।

कबहुँ जगत के कबहुँ स्वर्ग के स्वादनि मोहिं ललचायो ॥
भले होय किन लोह हेम की पुन्य पाप दोउ बेरी।
लोक मूल परमारथ स्वारथ नामहि में कछु फेरी ॥
इनमें भूल कृपानिधि तुम्हरे चरन कमल बिसराये।
तुम बिन भटक्यो फिर्यो जगत में नाहक जनम गंवाये ॥
हाय हाय करि मोह छांड़िकै, कबहुँ न धीरज धार्यो।
या जग जगती जोर अगिन, में आयसुदिन सब जार्यो ॥
करहु कृपा करुनानिधि के सब, जग को जाल छुड़ाई।
दीन हीन हरिचन्द दास कों बेगि लेहु अपनाई ॥८।

सखी ये नैना बहुत बुरे।

तब सों भये पराये हरि सों जब सों आइ जुरे ॥
मोहन के रसबस ह्वै डोलत, तलफत तनिक दुरे।

मेरी सीख प्रीति सब छांडी, ऐसे ये निगुरे ॥
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं, हठसों तनिक मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन से, विष के बुते छुरे ॥६॥

नाथ तुम अपनी ओर निहारौ।

हमरी ओर न देखहु प्यारे, निज गुन गननि विचारौ ॥
जो लखते अवलौ जन औगुन अपने गुन विसराई।
तौ तरते किमि अजामेल से पापी, देहु वताई ॥
अवलौ तौ कबहूँ नहि देखे जन के औगुन प्यारे।
तो अब नाथ नई क्यों ठानत, भाखे हूँ बार हमारे ॥
तवं गुन छमा दया सों मेरे, अघ नही वड़े कन्हाई।
तासों तारि देहु नंदनंदन हरीचन्द को धाई ॥१०॥

प्यारे मोहिं परखिए नाही।

हम न परिच्छा जोग तुम्हारे समझहु यह मन मांहीं ॥
पापहि सों उपज्यौ पापहि मे, सिगरा जनम सिरान्यौ।
तव सनमुख सो न्याय तुला पै कैसे कै ठहरान्यौ।
दया निधान भक्त वत्सल, करुनामय, भवभयहारी ॥
देखि दुखी हरिचन्दहि धर गांह- वेगहुं लेहु उवारी ॥११॥

जगत में घर की फूट बुरी।

घर की फूटहि सो विनसाई, सुवरन लंकपुरी ॥
फूटहि सो सब कौरव नासे भारत युद्ध भयों।
जाको घाटो या भारत मे, अवलौ नाहि पुज्यो ॥
फूटहि सो नवनन्द विनासे गयो मगध को राज।
चन्द्रगुप्त को नासन चाहृयौ आपु नसे सहसाज ॥
जो जग में धनमान और बल अपुनो राखन होय।
तो अपने घर में भूलेहु फूट करो मति कोय ॥१२॥

जग सूरज चन्द्र टरै पै टरै नहि सज्जन नेह कवौ विचलै।
धन सम्पत्ति सर्वस गेह वसौ, नहि प्रेम की मेंड़ सों ऐंड टलै॥
सतवादिन को तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा टलै तो टलै।
निज मीत की प्रीतीति रहो इक ग्रोर सबै जग जाउ भलै॥१३॥

जिन के हित कारक पन्डित हैं तिनको कहा सत्रुन को डर है।
समुझै जग मैं सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग विदेश मनो घर है॥
जिन मित्रता राख हैं लायक सौं तिनको तिनकाहू महा सर है।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कवौं तिनकी जय ही सबकी थर है॥१४॥

जानत ही नहि हौं जगमे किन्हि को सबरे मिलि भाखत हैं सुख।
चौंकत चैन को नाम सुनै, सपनेहुं न जानत भोगन कौ रुख॥
ऐसेन सौ हरिचन्दजू दूरहि, बैठनो का लखनो न भलो सुख।
मो दुखिया के न पास रहो, उड़ि कै न लगै तुमहू को कहूँ दुख॥१५॥

दीनदयाल कहाइकै धाइकै दीननि सों क्यो सनेह बढायो।
यो हरिचन्दजू वेदनि मे करुणानिधि नाम कहो क्यों धरायो॥
ऐसो रुखाई न चाहिए तापै, कृपा करिकै जेहि को अपनायो।
ऐसो ही जोपै सुभाव रह्यो तो गरीब निवाज क्यों नाम धरायो॥१६॥

भरित नेह नवनीर नित, वरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मनमोर॥१॥

जेहि लहि फिर कुछ लहन की आस न जिय मैं होय।
जयति जगत पावन-करन प्रेम वरन यह दोय॥२॥

चंद मिटै सूरज मिटै मिटै जगत के नेम।
पै दृढ श्री हरिचन्द को मिटै न अविचल प्रेम॥३॥
साधुन को संग पाइकै, हरि-जसु गाइ वजाइ।
नृत्य करत हरि प्रेम मैं, ऐसे जनम विहाइ॥४॥

—

द्वितीय खण्ड

अवधी विलास

—— ❋ ——

जायसी

(पद्मावत)

राजा-सुआ:संवाद खण्ड

राजै कहा सत्त कहु सूआ । बिनु सत जस सेंवर कर भूआ ।।
होइ मुख रात सत्य के बाता । जहां सत्य तहं धरम संघाता ।।
बाधी सिहिटि अहै सत केरी । लछिमी अहै सत्य कै चेरी ।।
सत्य जहा साहस सिधि पावा । औ सतवादी पुरुष कहावा ।।
सत कहं सती संवारै सरा । आगि लाइ चहुंदिसि सत जारा ।।
दुइ जग तरा सत्य जेइ राखा । और पियार दइहि सत भाखा ।।
सो सत छाड़ि जो धरम बिनासा । भा मतिहीन धरम करि नासा ।।

तुम्ह सयान औ पंडित, असत न भाखहु कांउ ।
सत्य कहहु तुम मो सो, दहुं काकर अनियाउ ।।१।।

सत्य कहत राजा जिउ जाऊ । पै मुख असत न भाखौ काऊ ।।
हौं सत लेइ निसरेउं एहि बूते । सिंघलदीप राजघर हूं ते ।।
पदमावति राजा कै बारी । हदुम-गध ससि विधि औतारी ।।
ससि मुख अंग मलयगिरि हानी । कभक सुगंध दुआदस बानी ।।
अहैं जो पदमिनि सिंघल माहां । सुगन्ध रूप सब तिण्ह कै छाहां ।।

हीरामन हौं तेहिक परेवा । कंठा फूट करत तेहि सेवा ॥
जो पाएउं मानप कैं भापां । नाहित पंखि मूठि भर पांखा ॥

लौ लहि जिग्रौं राति दिन, संवरौं ग्रोहि कर नांव ।
मुख राता, तन हरियर, दुहूं जगत लेइ जांव ॥२॥

हीरामन जो कंवल बखाना । सुनि राजा होइ भंवर भुलाना ॥
ग्रागे ग्राव, पंखि उजियारा । कहं सो दीप पतंग कै मारा ॥
ग्रहा जो कनक सुवासित ठाऊं । कस न होय हीरामन नाऊं ॥
को राजा, कस दीप उतंगू । जेहिरे सुनत मन भएउ पतंगू ॥
सुनि समुद्रभा चख किलकिला । कंवलहि चहौं भंवर होइ मिला ॥
कहु सुगंध धनि कस निरमली । भा-ग्रलि संग, कि ग्रबहीं कली ॥
ग्रौ कहु तहं जहं पदमिनि लोनी । घर घर सबके होइ जो होनी ॥

सबै बखान तहां कर, कहत सो मोसौं ग्राव ।
चहौं दीप वह देखा, सुनत उठा ग्रस चाव ॥३॥

का राजा हौं बरनौं तासू । सिंघलदीप ग्राहि कैलासू ॥
जो गा तहां भुलाना सोई । गा जुग बीति न बहुरा कोई ॥
घर घर पदमिनि छतिसौं जाती । सदा बसन्त दिवस ग्रौ राती ॥
जेहि जेहि बरन फूल फुलवारी । तेहि तेहि बरन सुगंध सोनारी ॥
गंध्रबसेन तहां बड़ राजा । ग्रछरिन्ह महं इन्द्रासन साजा ॥
सो पदमावति तेहि कर बारी । जो सब दीप मांहं उजियारी ॥
चहूं खंड के बर जो ग्रोनाहीं । गरबहि राजा बोलै नाहीं ॥

उग्रत सूर जस देखिय, चांद छपै तेहि रूप ।
ऐसे सबै जाहिं छपि, पदमावति कै रूप ॥४॥

सुनि रवि-नांव रतन भा राता । पंडित फेरि उहै कहु बाता ॥
तै सुरंग मूरति वह कही । चित महं लागि चित्र होइ रही ॥
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी । सब घट पूरि हिये परगसी ॥
अब हौं सुरुज चांद वह छाया । जल बिनु मीन, रकत बिनु काया ॥
किरिन-करा भा प्रेम अंकूरू । जो ससि सरग, मिलौ होइ सूरू ॥
सहसौ करा रूप मन भूला । जहं जहं दीठ कंवल जनु फूला ॥

तीन लोक चौदह खंड सबहि परै मोहि सूझि ।
प्रेम छांड़ि नहि लोन किछु, जो देखा मन बूझि ॥५॥

पेम सुनत मन भूलत राजा । कठिन पेम, सिर देइ तो छाजा ॥
पेम-फांद जो परा न छूटा । जीउ दीन्ह पै फांद न टूटा ॥
गिरगिट छन्द धरै दुख तेता । खन खन पीत, रात खन सेता ॥
जान पुछार जो भा बनवासी । रोंव रोंव परे फंद नगवासी ॥
पांखन्ह फिरि फिरि परा सो फांदू । उड़ि न सकै, अरुझा भा बांदू ॥
'मुयों मुयो' अहनिसि चिल्लाई । ओहि रोस नागन्ह धै खाई ॥
पंडुक सुआ, कंक वह चीन्हा । जेहि गिउ गिरा चाहि जिउ दीन्हा ॥

तीतिर जिउ जो फांद है, निति पुकारै दोख ।
सो कित हंकारि फांद गिउ (कित) मारे होइ मोख ॥६॥

राजै लीन्ह ऊबि के सांसा । ऐसे बोल जिनि बोलु निरासा ॥
भलेहि पेम है कठिन दुहेला । दुइ जग तरा पेम जेइ खेला ॥
दुख भीतर जो पेम मधु राखा । जग नहि मरन सहै जो चाखा ॥
जो नहि सीस पेम पथ लावा । सो प्रिथिमी महं काहेक आवा ॥
अब मैं पेम पंथ सिर मेला । पांव न ठेलु, राखु कै चेला ॥
पेम बार सो कहै जो देखा । जो न देख, का जान विसेखा ॥
तौ लगि दुख पीतम नहि भेटा । मिलै, तौ जाइ जनम दुख मेटा ॥

जस अनूप, तू बरनेसि, नखसिख बरनु सिगार।
है मोहि आस मिलै कै, जो मेरवै करतार॥

तुलसीदास

(रामचरित मानस)

बाललीला

बाल चरित हरि बहु विधि कीन्हा। अति आनन्द दासिन्ह कँह दीन्हा॥
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई॥
चूड़ाकरम कीन्ह गुरु जाई। विप्रन पुनि दछिना बहु पाई॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥
मन क्रम वचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर विचरं प्रभु सोई॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि-ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अन्त न पावा। ताहि धरै जननी उठि धावा॥
धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति विहँसि गोद बैठाए॥

भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ॥१॥

बाल चरित अति सरल सुहाए। सारद शेष शंभु श्रुति गाए॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन वंचित किए विधाता॥
भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब आई॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
विद्या विनय निपुण गुण शीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥

करतल वाण धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥
जिन्ह वीथिन्ह विहरहिं सब भाई । थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥

कोशलपुर वासी नर, नारी वृद्ध अरु बाल ।
प्रानहु ते प्रिय लागत, सब कहुँ राम कृपाल ॥२॥

बन्धु सखा संग लेहिं बोलाई । बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥
पावन मृग मारहिं जिय जानी । दिन प्रति नृपहिं देखावहिं आनी ॥
जे मृग राम बान के मारे । ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥
अनुज सखा संग भोजन करहीं । मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ॥
जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा । करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥
वेद पुराण सुनहिं मन लाई । आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयसु मांगि करहिं पुर काजा । देखि चरित हरषहिं मन राजा ॥

व्यापक सकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ॥३॥

लक्ष्मण-वन-गमन

समाचार जब लछिमन पाए । व्याकुल विलखि वदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तनु नयन सनीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनु दीन जनु जल ते काढ़े ॥
सोच हृदय विधि का होनिहारा । सब सुख सुकृत सिरान हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लैहहिं साथा ॥
राम विलोक बन्धु कर जोरे । देह गेह सब सन तृन तोरे ॥
बोले वचन राम नयनागर । सील सनेह सरल सुखसागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराऊ । समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जाय ॥१॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाऊं तुम्हहि लै साथा। होइ सबहि विधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुं परइ दुसह दुख भारू ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहै बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात अस नीति विचारी। सुनत लखन भए व्याकुल भारी ॥
सिअरे वचन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥२॥

दीन्ह मोहि सिख नीक गुसाईं। लागि अगम अपनी कदराई ॥
नरवर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउं काहू। कहउं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहं लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीन बन्धु उर अन्तरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम वचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥

करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु वचन विनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत ॥३॥

मांगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भए सुनि रघुवर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुं अंध फिरि लोचन पाए ॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मन रघुनन्दन जानकि साथा ॥
पूंछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा विसेखी ॥

गई सहमि सुनि वचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह वस करव अकाजू॥
मांगत विदा समय सकुचाहीं। जाइ संग विधि कहहि कि नाही॥

समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुसील सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर पापिन कीन्ह कुदाउ॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद वोली मृदु वानी॥
तात तुम्हार मात वैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही॥
अवध तहाँ जहं राम निवासू। तहाँ दिवसु जहं भानु प्रकासू॥
जौ पै सीय राम वन जाही। अवध तुम्हार काजु कछु नाही॥
गुरु पितु मातु वन्धु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रान प्रिय जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नाते॥
अस जिय जानि संग वन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

भूरि भाग भाजनु भयहु, मोहि समेत वलि जाउं।
जौ तुम्हरे मन छांडि छलु, कीन्ह राम पद ठाउं॥५॥

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
नतरु वांझ भलि वादि विआनी। राम विमुख सुत तैं हित हानी॥
तुम्हरेहिं भाग रामु वन जाहीं। दूसर हेत तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर वड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
रागु रोष इरषा मद मोहू। जनि सपनेहुं इन्हके वस होहू॥
सकल प्रकार विकार विहाई। मन क्रम वचन करेहू सेवकाई॥
तुम्ह कहं वन सव भांति सुपासू। संग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु वन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करहु इहइ उपदेसू॥

छंद—उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति वन विसरावहीं॥

तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अविरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।

सो०--राम चरन सिरनाइ चले तुरत संकित हृदय।
बागुर विषम तुराइ मनहुं भाग मृगु भाग बस ॥६॥

भरत की विनयोक्ति

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सब ही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउं कीन्हा॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित अरिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किए विचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥
तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउं नीके। तदपि होत परितोषु न जीके॥
अब तुम्ह विनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतर देउं छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु॥

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु-कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
सोक समाजु राजु केहि लेखे। लखन रामु सिय बिनु पद देखे॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरत बिनु ब्रह्म विचारू॥
सहज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जायं जपु जोगा॥
जायं जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥
जाउं राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आंक मोर हित एहू॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥

कैकेई सुम कुटिल मति, राम विमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह बस, मोहि से अधम कें राज ॥२॥

कहउ सांचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरम सील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबही। रसा रसातल जाइहि तबही ॥
मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनवासू ॥
राउ राम कहुँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा ॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनउं अचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥
राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे ॥
कहं लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई ॥

कारन तें कारज कठिन, होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥३॥

कैकेइ भव तनु अनुरागे। पांवर प्रान अघाइ अभागे ॥
जौ प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥
लखन राम सिय कहुं बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पतिहित कीन्हा ॥
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू। दीन्हहि प्रजहि सोकु संतापू ॥
मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकेई सब कर काजू ॥
एहितें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥
कैकेइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोहि कहं कछु अनुचित नाहीं ॥
मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पांच कत करहु सहाई ॥

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥४॥

कैकेइ सुमत जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ही मोहि सोई ॥
दसरथ तनय रामलघु भाई। दीन्ह मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥
तुम्ह सब कहहु कढावन टीका। राम रजायसु सब कहं नीका ॥
उतरु देउ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥

मोहि कुमातु समेत बिहाई । कहहु कहहि को कीन्ह भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर मांही । जेहिं सियराम प्रानप्रिय नाहीं ॥
परम हानि सब कह बड़ लाहू । अदिनु मोर नहिं दूषन काहू ॥
संसय सील प्रेम बस अहहू । सबुइ उचित सब. जो कछु कहहू ॥

राम मातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेम बिसेखि
कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि ॥५॥

गुरु बिवेक सागर जगु जाना । जिनहिं बिस्व कर-बदर समाना ॥
मो कहं तिलक साज सज सोऊ । भय बिधि बिमुख बिमुख सबकोउ ॥
परिहरि राम सीय जग माहीं । कोउ न कहहि मोर मत नाहीं ॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी । अंतहु कीच तहाँ जह पानी ॥
डरु न मोहि जग कहहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगि भे सियराम दुखारी ॥
जीवन लाहु लखन भल पावा । सबु तजि रामचरन मनु लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन लागी । झूठ काह पछिताउं अभागी ॥

आपनि दारुन दीनता, कहउं सबहि सिरु नाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥६॥

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा । को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥
एकहि आंक इहइ मन माहीं । प्रातकाल चलिहउं प्रभु पाहीं ॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी । भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ।
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ । कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥
तुम्ह पै पांच मोर भलमानी । आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहिं बहुरि राम रजधानी ॥

जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठु सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस ॥७॥

कलि-वर्णन

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भए सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मत कल्पि करि, प्रकट किए बहु पंथ ॥१॥

भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरि जान ग्यान निधि, कहउं कछुक कलिधर्म ॥२॥

बरन धर्म नहिं आस्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नरनारी ॥
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजाजन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
मारग सोई जा कहूँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभरत जोई। ताकहु सन्त कहइ सब कोई ॥
सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥
निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी वैरागी ॥
जाकर नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलि काला ॥

असुभवेप भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥३॥

जेइ अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम वचन लवार, तेइ बकता कलिकाल महुं ॥४॥

नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मरकट की नाईं ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति सन्त विरोधी ॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥
सौभागिनी विभूषन हीना। विधवन्ह के सिंगार नवीना ॥
गुरु सिष बधिर अन्ध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महुँ परई ।।
मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ।।

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, करहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात ।।५।।

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुमसे कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि ।।६।।

परतिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ।।
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ।।
आपु गए अरु तिनहू घालहिं। जे कहुं सत मारग प्रतिपालहिं ।।
कल्प कल्प भर एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ।।
तजि बरनाश्रम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा ।।
नारि मुई गृह सम्पति नासी। मूंड मुंडाइ होइ सन्यासी ।।
ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ।।
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ।।
सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना ।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरन अनीति अपारा ।।

भये बरन संकर कलि, भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुःख, भय रुज सोक वियोग ।।७।।

श्रुति संमति हरि भक्ति पथ, संजुत बिरति विवेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पन्थ अनेक ।।८।।

तृतीय खण्ड

खड़ीबोली-सुषमा

श्री मैथिलीशरण गुप्त

(साकेत)

उर्मिला-लक्ष्मण-संवाद

सौध सिंह द्वार पर अब भी वही,
बांसुरी रस-रागिनी में बज रही।
अनुकरण करता उसी का कीर है,
पंजर-स्थित जो सुरम्य शरीर है॥
उर्मिला ने कीर-सम्मुख दृष्टि की,
या वहां दो खञ्जनों की सृष्टि की।
मौन होकर कीर तब विस्मित हुआ,
रह गया वह देखता सा स्थित हुआ॥
प्रेम से उस प्रेयसी ने तब कहा,
"रे सुभाषी, बोल, चुप क्यों हो रहा?"
पार्श्व से सौमित्रि आ पहुँचे तभी,
और बोले—"लो, बता दूं मैं अभी॥

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है?"
यों वचन कह कर सहास्य विनोद से,
मुग्ध हो सौमित्रि मन के मोद से।
हो गये आकर खड़े स्थिर चाल से,
पद्मिनी के पास मत्त मराल से॥
चारु चित्रित भित्तियां भी वे बड़ी,
देखती ही रह गईं मानों खड़ी।
प्रीति से आवेग मानो आ मिला,
और हार्दिक हास आंखों में खिला॥
मुस्करा कर अमृत बरसाती हुई,
रसिकता में सुरस सरसाती हुई॥
उर्मिला बोली "अजी, तुम जग गये?
स्वप्न-निधि से नयन कबसे लग गये?"
"मोहनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"
गत हुई संलाप में बहु रात थी,
प्रथम उठने की परस्पर बात थी॥
"जागरण है स्वप्न से अच्छा नहीं,
प्रेम में कुछ भी बुरा होता नहीं।"

प्रेम की यह रुचि विचित्र सराहिए,
योग्यता क्या कुछ न होनी चाहिए?"
"धन्य है प्यारी, तुम्हारी योग्यता,
मोहिनी सी मूर्ति, मंजु मनोज्ञता।
धन्य जो इस योग्यता के पास हूं,
किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूं॥"
"दास बनने का बहाना किस लिए?
क्या मुझे दासी कहाना इस लिये?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो,
और देवी ही मुझे रक्खो, अहो॥"
उर्मिला यह कह तनिक चुप हो रही,
तब कहा सौमित्रि ने कि "यही सही।
तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा।
मैं तुम्हारा हूं प्रणय-सेवी सदा॥"
फर कहा—"वरदान भी दोगी मुझे?
माननी, कुछ मान भी दोगी मुझे?"
उर्मिला बोली कि, "यह क्या धर्म है?
कामना को छोड़ कर ही कर्म है॥"
"किन्तु मेरी कामना छोटी बड़ी,
है तुम्हारे पाद-पद्मों में पड़ी।
त्याग या स्वीकार कुछ भी हो भले,
वह तुम्हारी वस्तु आश्रित-वत्सले!"

"शस्त्रधारी हो न तुम, विष के बुझे,
क्यों न कांटों में घसीटोगे मुझे।
अवश अबला हूं, न मैं, कुछ भी करो,
किन्तु पैर नहीं, शिरोरुह तब धरो॥"
"सांप पकड़ाओ न मुझको निदय,
देखकर ही विष चढ़े जिनका अये।
अमृत भी पल्लव पुटों में है भरा,
विरस मन को भी बनादे जो हरा॥
'अवश-अबला' तुम ? सकल बल-वीरता,
विश्व की गम्भीरता, ध्रुव धीरता।
बलि तुम्हारी एक बांकी दृष्टि पर,
मर रही है, जी रही है सृष्टि भर॥
भूमि के कोटर, गुहा, गिरि, गर्त भी,
शून्यता नभ की, सलिल आवर्त भी,
प्रेयसी, किसके सहज संसर्ग से,
दीखते हैं, प्राणियों को स्वर्ग से ?
जन्म-भूमि-ममत्व कृपया छोड़ कर,
चारु चिन्तामणि-कला से होड़ कर।
कल्पवल्ली-सी तुम्ही चलती हुई,
बांटती हो दिव्य फल फलती हुई !"
"खोजती हैं, किन्तु आश्रय मात्र हम,
चाहती हैं एक तुम सा पात्र हम।

आन्तरिक सुख दुःख हम जिसमें धरें,
और निज भवभार यों हलका करें ॥
तदपि तुम—यह कीर क्या कहने चला ?
कह अरे क्या चाहिये तुझको भला ?
"जनकपुर की राज-कुञ्ज-विहारिका,
एक सुकुमारि सलौनी सारिका ॥"
देख निज शिक्षा सफल लक्ष्मण हँसे,
उर्मिला के नेत्र खंजन से फँसे ।
"तोड़ना होगा धनुष उसके लिये";
"तोड़ डाला है उसे प्रभु ने प्रिये !
सुतनु, टूटे का भला क्या तोड़ना ?
कीर का है काम दाड़िम फोड़ना,
होड़ दाँतों की तुम्हारे जो करे,
जन्म मिथिला या अयोध्या में धरे !"
ललित ग्रीवा-भंग दिखला कर अहा !
उर्मिला ने लक्ष कर प्रिय को, कहा—
"और भी तुमने किया कुछ है कभी,
या कि सुग्गे ही पढ़ाये हैं अभी ?"
"बस तुम्हें पाकर अभी सीखा यही,"
बात यह सौमित्रि ने सस्मित कही ।
"देख लूँगी"—उर्मिला ने भी कहा,
विविध विध फिर भी विनोदामृत बहा ॥

हार जाते पति कभी, पत्नी कभी,
किन्तु वे होते अधिक हर्षित तभी।
प्रेमियों का प्रेम गीता गीत है,
हार में जिसमें परस्पर जीत है !"

उर्मिला-विरह

मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप।
जलती सी उस विरह में, बनी आरती आप॥
आँखों में प्रिय मूर्ति थी, भले ये सब भोग।
हुआ योग से भी अधिक, उसका विषम वियोग॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, स्वामी ही का ध्यान।
छूट गया पीछे स्वयं उसका आत्मज्ञान॥

*　　*　　*

लिख कर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा।
व्योम-सिन्धु सखि देख, तारक बुद्बुद् दे रहा॥

*　　*

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि पतंग तो जलता ही है, दीपक भी जलता है॥
सीस हिलाकर दीपक कहता—
'बंधु वृथा ही तू क्यों दहता—?'
पर पतंग पड़ कर ही रहता।

कितनी विह्वलता है ।
दोनों ओर प्रेम पलता है ॥

बच कर हाय पतंग करे क्या ?
प्रणय छोड़ कर प्राण धरे क्या ?
जले नहीं तो मरा करे क्या ?
क्या यह असफलता है ।
दोनों ओर प्रेम पलता है ॥

कहता है पतंग मन मारे,
तुम महान, मैं लघु, पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाय हमारे ?
शरण किसे छलता है ।
दोनों ओर प्रेम पलता है ॥

दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली ।
किन्तु पतंग–भाग्य–लिपि काली,
किसका वश चलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है ।

जगती वणिग्वृत्ति हैं रखती,
उसे चाहती जिससे चखती ।
काम नहीं, परिणाम निरखती ।
मुझे यही खलता है ।
दोनों ओर प्रेम पलता है ॥

बता अरीं अब क्या करूं रूपी रात से रार।
भय खाऊं आंसू पिऊं, मन मारूं झकमार॥

* * *

अरी सुरभि जा लौट जा अपने अङ्ग सहेज।
तू है फूलों में पली यह कांटों की सेज॥
यथार्थ था जो सपना हुआ है,
अलीक था जो, अपना हुआ है।
रही यहाँ केवल है कहानी,
सुना वही एक नई पुरानी।

* * *

आजा मेरी निंदिया गूंगी।
आ, मैं सिर आंखों पर लेकर चन्द खिलौना दूंगी!
प्रिय के आने पर आवेगी,
अर्द्ध चन्द्र ही तो पावेगी।
पर यदि आज उन्हें लावेगी,
तो तुझ से ही लूंगी।
आजा मेरी निंदिया गूंगी।
पलक पांवड़ो पर पद रख तू,
तनिक सलौना रस भी चख तू,
आ दुखिया की ओर निरख तू,
मैं न्योछावर हूंगी।
आजा मेरी निंदिया गूंगी।

हाय ! हृदय को थाम पर भी मैं सकती नहीं।
दुःस्वप्नों का नाम, लेती है सखि, तू वहां।

* * *

हाय ! न आया स्वप्न भी और गई यह रात।
सखि उडुगण भी चले, अब क्या गिनूं प्रभात ?

चंचल भी किरणों का
चरित्र क्या ही पवित्र है भोला,
देकर साख उन्होंने उठा लिया लाल लाल वह गोला।
सखि, नील नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा ! तरता तरता।
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता चरता॥
अपने हिम-विन्दु बचे तब भी, चलता उनको धरता धरता।
गड़ जायें न कण्टक भूतल में, कर डाल रहा डरता डरता॥

यशोधरा

(१)

देखी मैंने आज जरा।
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ?
हाय ! मिलेंगी मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा ?
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा ?
सौ सौ रोग खड़े हों सन्मुख, पशु ज्यों बांध परा।
धिक् जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा !
रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर भरा भरा ?
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा ?

महाभिनिष्क्रमण

आज्ञा लूं या दूं मैं अकाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम ?

रख भव अपना यह स्वप्न-जाल ;
निष्फल मेरे ऊपर न डाल।
मैं जागरूक हूं ले संभाल—
निज राज-पाट, धन, धरणि, धाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

रहने दे वैभव यशः-शोभ
जव हमी नही; क्या कीर्ति-लोभ ?
तू क्षम्य, करूं क्यों हाय क्षोभ,
थम थम अपने को आप थाम।
ओ क्षणभंगुर भव राम राम !

क्या भाग रहा हूं भार देख ?
तू मेरी ओर निहार देख।
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

* * *

प्रच्छन्न रोग हैं प्रकट भोग ;
संयोग मात्र भावी वियोग !
हा लोभ मोह में लीन लोग

भूले हैं अपना अपरिणाम !
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

* * *

मैं सूँघ चुका वे फुल्ल फूल,
झड़ने को हैं सब झटित भूल।
चख देख चुका हूं मैं, समूल—
सड़ने को हैं वे अखिल आम !
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

सुन सुन कर छू छू कर अशेष,
मैं निरख चुका हूं निर्निमेष,
यदि राम नहीं, तो हाय ! द्वेष,
चिरनिद्रा की सब झूम-झाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

उन विषयों में परितृप्ति हाय !
करते हैं हम उलटे उपाय।
खुजलाऊं मैं क्या बैठ काम ?
हो जाय और भी प्रबल राम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

* * *

तू दे सकता था विपुल वित्त,
पर भूले उसमें भ्रान्त चित्त।
जाने दे चिर जीवन-निमित्त।

दूं क्या मैं तुझको हाड़ चाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

रह काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह,
लेता हूं मैं कुछ और टोह।
कब तक देखूं चुपचाप ओह !
आने जाने की धूम धाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम ?

हे ओक ! न कर तू रोक टोक,
पथ देख रहा है आर्त्त लोक.
मेंटू मैं उसका दुःख शोक,
बस लक्ष्य यही मेरा ललाम !
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

मैं त्रिविध-दुःख-विनिवृत्ति हेतु,
बांधू अपना पुरुषार्थ-सेतु;
सर्वत्र उड़े कल्याण-केतु,
तब हो मेरा सिद्धार्थ नाम ?
ओ क्षणभंगुर. भव, राम राम ॥

* * *

वह जन्म मरण का भ्रमण-भाण
मैं देख चुका हूं अपरिमाण।
निर्वाण-हेतु मेरा प्रयाण;
क्या वात-वृष्टि, क्या, शीत-घाम।

ओ क्षणभंगुर भव, राम राम ।।

हे राम तुम्हारा वंशजात,
सिद्धार्थ तुम्हारी भांति, तात ।
घर छोड़ चला यह आज रात;
आशीष उसे दो, लो प्रणाम ।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

अयोध्यासिंह उपाध्याय

(प्रिय प्रवास)

यशोदा का वात्सल्य

प्रिय पति वह मेरा प्राणप्यारा कहां है ।
दुःख-जलनिधि-डूबी का सहारा कहां है ।
लख मुख जिसका मैं आज लों जी सकी हूं ।
वह हृदय हमारा नेत्र-तारा कहां है ।।१।।

पल पल जिसके मैं पन्थ को देखती थी ।
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती ।
उर पर जिसके थी सोहती मुक्तमाला ।
वह नव—नलिनी से नेत्रवाला कहां है ।।२।।

मुझ विजित-जरा का एक आधार जो है ।
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा ।
धन मुझ निधनी का लोचनों का उजाला ।
सजल जलद की सी कान्तिवाला कहां है ।।३।।

प्रतिदिन जिसको मैं अङ्क में नाथ लेके ।
निज सकल कुअंकों की क्रिया कीलती थी ।
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला ।
वह किसलय के से अङ्गवाला कहाँ है ॥४॥

वर वदन विलोके फुल्ल अंभोज ऐसा ।
करतल गत होता व्योम का चन्द्रमा था ।
मृदु रव जिसका है रक्त सूखी नसों का ।
वह मधुमयकारी मानसों का कहाँ है ॥५॥

रसमय वचनों से नाथ जो सर्वदा ही ।
सदन बिच बहाता स्वर्ग-मन्दाकिनी था ।
श्रुति बिच टपकाता बूंद जो था सुधा की ।
वह नव खनि न्यारी मञ्जुता की कहाँ है ॥६॥

स्वकुल जलज का है जो समुत्फुल्लकारी ।
मम परम - निराशा - यामिनी का विनाशी ।
ब्रज-जन - विहगों के वृन्द का मोददाता ।
वह दिनकर - शोभी राम-भ्राता कहाँ है ॥७॥

मुख पर जिसके है सौम्यता खेलती सी ।
अनुपम जिसका है शील सौजन्य पाती ।
पर-दुख लखके है जो समुद्विग्न होता ।
वह सरलपने का स्वच्छ सोता कहाँ है ॥८॥

निविड़तम निराशा जो भरा गेह में था।
निज मुख - द्युति से है जो उसे ध्वंसकारी।
सुखकर जिससे है कामिनी जन्म मेरा।
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है॥९॥

सह कर कितने ही कष्ट औ सङ्कटों को।
बहु यजन कराके पूजके निर्जरों को।
यक सुअन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा।
प्रियतम ! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहां है॥१०॥

मुखरित करता जो सद्म को था शुकों सा।
कलरव करता था जो खगों सा वनों में।
सुध्वनित पिकलों जो वाटिका को बनाता।
वह बहुविध कंठों का विधाता कहां है॥११॥

खग मृग जिसके थे गान से मत्त होते।
तरुगण :हरियाली थी महादिव्य होती।
पुलकित करती थी जो लताबेलि सारी।
उस कल मुरली का नादकारी कहाँ है॥१२॥

जिस प्रिय बिन सूना ग्राम सारा हुआ है।
सकल सदन में ही छा गई है उदासी।
जिस बिन ब्रज भू में है न होता उजाला।
वह निपट निराली कान्तिवाला कहाँ है॥१३॥

वन वन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों।
शुक भर भर आंखें गेह को देखता है।
सुधि कर जिसकी हैं सारिका नित्य रोती।
वह निधि मृदुता का मंजु मोती कहाँ है ॥१४॥

गृह गृह अकुलाती गोप की पत्नियां हैं।
पथ पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो।
जिस कुंवर बिना मैं हो रही हूं अधीरा,
वह खनि सुषमा का स्वच्छ हीरा कहां है ॥१५॥

वर्षा-वर्णन

सरस सुन्दर सावन मास था, घन रहे नभ में घिर घूमते।
विलसती बहुधा जिसमें रही, छविवती उड़ती बकमालिका ॥१॥
घहरता गिरि सानु समीप था, बरसता छिति छू नववारि था।
घन कभी रवि-अन्तिम अंशु ले, गगन में रचता बहु चित्र था ॥२॥
नव प्रभा परमोज्वल लीक सी, गतिवती कुटिला फणिनी-समा।
दमकती दुरती घन अंक में, विपुल-केली-कला-खनि दामिनी ॥३॥
विविध रूप धरे नभ मे कभी, विहरता वर वारिद व्यूह था।
बरससा बहु पावन वारि था, वह कभी सरसा करके रसा ॥४॥
सलिल पूरित थी सरसी हुई, उमड़ते पड़ते सर-वृन्द थे।
कर सुप्लावित कूल समस्त को, सरित थी सप्रमोद प्रवाहिता ॥५॥
वसुमती पर थी अति शोभिता, नवल कोमल श्याम तृणावली।
नयन-रंजन थी करती महा, अनुपमा तरुराजि-हरीतिमा ॥६॥

हिल लगे मृदु मन्द समीर के सलिल विन्दु गिरा सुठि अंक से।
मन रहे किसका न विमोहते, जल धुले दल पादप पुंज के ॥७॥
विपुल मोर लिये बहु मोरनी, विहरते सुख से सविनोद थे।
जटिल नीलम पुच्छ प्रभाव से, मणिमयी करके वन-मेदिनी ॥८॥
बन प्रमत्त-समान पपीहरा, पुलक के उठता कह पी कहां।
लख वसन्त-विमोहिनि-मंजुता, उमग कूक रहा पिक-पुंज था ॥९॥
सरव पावस-भूप-प्रताप जो, सलिल में कहते बहु भेक थे।
विपुल झींगुर तो थल में उसे, धुन लगा करते नित गान थे ॥१०॥
सुखद पावस के प्रति सर्व की प्रगट सी करती अति प्रीति थी।
वसुमती अनुराग - स्वरूपिणी, विलसती बहु बीरबहूटियां ॥११॥
परम म्लान हुई बहु वेलि को, निरख के फलिता अति-पुष्पिता।
सकल के उर में रम सी गई, सुखद-शासन की उपकारिता ॥१२॥
विविध आकृति औ फल फूल की, उपजती अवलोक सुबूटियां।
प्रगट थी महि-मण्डल में हुई, प्रियकरी-प्रतिपत्ति पयोद की ॥१३॥
रसमयी लख वस्तु असंख्य को, सरसता लख भूतल व्यापिनी।
समझ है पड़ता बरसात में उदक का रस नाम यथार्थ है ॥१४॥
मृतक-प्राय हुई तृणराजि भी, सलिल से फिर जीवित होगई।
फिर सुजीवन जीवन को मिला, बुध न जीवन क्यों उसको कहें ॥१५॥

कृष्ण का चरित्र

संसार में सकल काल नृरत्न ऐसे,
हैं होगये अवनि है जिनकी कृतज्ञा।

सारे अपूर्व गुण हैं हरि के बताते,
सच्चे नृरत्न वह भी इस काल के हैं ॥१॥
जो कार्य श्याम-घन से अबलौं किये हैं,
कोई उन्हें न सकता कर था कभी भी।
वे कार्य औ बरस द्वादश की अवस्था,
ऊधो न क्यों नृरत्न मुकुन्द होगा ॥२॥
बातें बड़ी सरस थे कहते विहारी,
छोटे बड़े सकल का हित चाहते थे।
अत्यन्त प्यार संग वे मिलते सबों से,
वे थे सहायक बड़े दुख के दिनों में ॥३॥
होके विनम्र मिलते बह थे बड़ों से,
थे बात-चीत करते बहु शिष्टता से।
बातें विरोध-कर थीं उन को न प्यारी,
वे थे न भूल कर भी अप्रसन्न होते ॥४॥
थे प्रीति साथ मिलते सब बालकों से,
थे खेलते सकल खेल विनोदकारी।
नाना अपूर्व फलफूल सदा खिलाके,
थे वे विनोदित महा उन को बनाते ॥५॥
जो देखते कलह शुष्क विवाद होता,
तो शान्त श्याम उनको करते सदा थे।
कोई बली निर्बल को यदि था सताता,
तो वे तिरस्कृत महा करते उसे थे ॥६॥

होते प्रसन्न अति थे यदि देखते थे,
कोई स्वकृत्य करता अति प्रीति से है।
यों ही विशिष्ट-पद गौरव की उपेक्षा,
देती नितान्त उनके चितको व्यथा थी ॥७॥

माता पिता गुरुजनों वय में बड़ों को,
होते निरादृत कहीं यदि देखते थे।
तो खिन्न हो दुखित हो लघु को सुतों को,
शिक्षा समेत वह थे बहु शान्ति देते ॥८॥

थे राजपुत्र उनमें मद था न तो भी,
वे दीन के सदन थे अधिकांश जाते।
बातें मनोरम सुना दुख जानते थे,
औ थे विमोचन उसे करते कृपा से ॥९॥

रोगी दुखी विपत-आपद में पड़े की,
सेवा अनेक करते निज हस्त से वे।
ऐसा निकेत व्रज में न मुझे दिखाया,
कोई जहां दुखित हो पर वे न होवे ॥१०॥

सन्तानहीन जन तो व्रजबंधु को पा,
सन्तानवान निज को कहते रहे ही।
सन्तानवान जन भी व्रजरत्न ही का,
सन्तान से अधिक थे रखते भरोसा ॥११॥

जो थे किसी सदन में बलवीर जाते,
तो मान वे अधिक थे लहते सुतों से।

थे राजपुत्र इस हेतु नहीं, सदा वे
होते सुपूजित रहे शुभ कर्म द्वारा ॥१२॥

भू में सदा यदपि है जन मान पाता,
राज्याधिकार अथवा धन द्रव्य द्वारा।
होता परन्तु वह पूजित विश्व में है,
निस्वार्थ भूत हित औ कर लोक-सेवा ॥१३॥

थोड़ी अभी यदपि है उनकी अवस्था,
तो भी नितान्त-रत वे इस कर्म में हैं।
ऐसा विलोक वर-बोध स्वभाव से ही,
होता सुसिद्ध यह है वह हैं महात्मा ॥१४॥

विद्या सुसंगति समस्त सुनीति-शिक्षा,
ये तो विकास भर की अधिकारिणी हैं।
अच्छा बुरा मलिन दिव्य स्वभाव भू में,
पाता निसर्ग कर से नर सर्वदा है ॥१५॥

ऐसे सुबोध मतिमान कृपालु ज्ञानी,
जो आज लौं न मथुरा तज सद्म आये।
तो वे न भूल ब्रज के जन को गये हैं,
है अन्य हेतु इसका अति गूढ़ कोई ॥१६॥

पूरा नहीं कर सके उचिताभिलाषा,
नाना महान जन भी इस मेदिनी में।
होके निरस्त बहुधा नृपनीतियों से;
लोकोपकार-व्रत मे अवलोक बाधा ॥१७॥

बातें वही समझ बूझ विमूढ़ सा हो,
मैं क्या कहूं न यह है मुझको जनाता।
हां एक ही विनय हूँ करता स-आशा,
कोई सुयुक्ति ब्रज के हित की करें वे ॥१७॥
है रोम रोम कहता घनश्याम आवें,
आके मनोहर प्रभा मुखकी दिखावें,
डालें प्रकाश उरके तम को नसावें,
खोते स्वज्योति दृग की द्युति को बढ़ावें ॥१८॥
तो भी सदैव चित से यह चाहता हूँ,
है रोम-कूप तक से यह नाद होता।
संभावना यदि किसी कुप्रपंच की हो,
तो श्याम-मूर्ति ब्रज में न कदापि आवें ॥१९॥
कैसे भला स्वहित की कर चिन्तनायें,
कोई मुकुन्द हित ओर न दृष्टि देगा।
कैसे अश्रेय उसका प्रिय हो सकेगा,
जो प्राण से अधिक है ब्रज प्राणियों को ॥२०॥

जयशंकरप्रसाद

(कामायनी)

श्रद्धा-मनु संवाद

तपस्वी ! क्यों इतने हो क्लान्त ?
वेदना का यह कैसा वेग ?

आह ! तुम कितने अधिक हताश,
बताओ यह कैसा उद्वेग !
हृदय में क्या है नही अधीर,
लालसा जीवन की निश्शेष ?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग,
तुम्हें, मन में धर सुन्दर वेश !
दुःख के डर से तुम अज्ञात,
जटिलताओं का कर अनुमान।
काम में झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बन कर अनजान।
कर रही लीलामय आनन्द,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।
काम मंगल से मंडित श्रेय,
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भवधाम।
दुःख की पिछली रजनी बीच,
विकसता सुख का नवल प्रभात।
एक परदा यह झीना नील,
छिपाये हैं जिन में सुखगात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ भूल।
विषमता की पीड़ा से व्यस्त,
हो रहा स्पन्दित विश्व महान।
यही दुख सुख विकास का सत्य,
यही भूमि का मधुमय दान।
नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान।
व्यथा से नीली लहरों बीच,
बिखरते सुख-मणि-गण द्युतिमान।
लगे कहने मनु सहित विषाद:—
"मधुर मारुत से ये उच्छ्वास।
अधिक उत्साह तरङ्ग अबाध,
उठाते मानस में सविलास।
किन्तु जीवन कितना निरुपाय,
लिया है देख नहीं सन्देह।
निराशा है जिसका परिणाम,
सफलता का वह कल्पित गेह।
कहा आगन्तुक ने सस्नेह:—
"अरे तुम इतने हुए अधीर।

हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मर कर जिसको वीर।
तप नहीं केवल जीवन सत्य,
सो रहा आशा का आह्लाद।
प्रकृति के यौवन के शृङ्गार,
करेंगे कभी न बासी फूल।
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र,
सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आनन्द,
किये है परिवर्तन में टेक।
युगों की चट्टानों पर सृष्टि,
डाल पद-चिन्ह चली गम्भीर।
देव गंधर्व, असुर की पंक्ति,
अनुसरण करती उसे अधीर।
एक तुम, यह विस्तृत भूखण्ड,
प्रकृति वैभव से भरा अमंद।
कर्म का भोग; भोग का कर्म,
यही जड़ का चेतन आनन्द।
अकेले तुम कैसे असहाय,
यजन कर सकते? तुच्छ विचार!
तपस्वी! आकर्षण से हीन,
कर सके नहीं आत्म-विस्तार।

197

दब रहे हो अपने ही बोझ,

खोजते भी न कहीं अवलम्ब।

तुम्हारा सहचर बनकर क्या न,

उऋण होऊँ मैं बिना विलम्ब।

समर्पण लो सेवा का सार,

सजल संसृति का यह पतवार।

आज से यह जीवन उत्सर्ग,

इसी पदतल में विगत विकार।

दया, माया, ममता लो आज,

मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।

हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ,

तुम्हारे लिये खुला है पास।

बनो संसृति के मूल रहस्य,

तुम्हीं से फैलेगी वह बेल

विश्वभर सौरभ से भर जाय,

सुमन के खेलो सुन्दर खेल

और यह क्या तुम सुनते नहीं,

विधाता का मंगल वरदान—

"शक्तिशाली हो, विजयी बनो,"

विश्व में गूंज रहा जयगान

"डरो मत अरे अमृत संतान,

अग्रसर है मंगलमय वृद्धि

पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र,
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।
देव असफलताओं का ध्वंस,
प्रचुर ‹ · '.ण जुटा कर आज।
पड़ा है वन मानव ,
पूर्ण हो मन का चेतद राज।
चेतना का सुन्दर इतिहास,
अखिल मानव भावों का सत्य।
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य,
अक्षरों से अङ्कित हो नित्य।
विधाता की कल्याणी सृष्टि,
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण।
पटें सागर बिखरे ग्रह-पुंज,
और ज्वालामुखियां हों चूर्ण।
उन्हें चिंगारी सदृश सदर्प,
कुचलती रहे खड़ी सानन्द।
आज से मानवता की कीर्ति,
अनिल, भू, जल में रहे न बन्द।
जलधि के फूटें ।ः ने उत्स,
कच्छप डूबें उतराएं।
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति,
अभ्युदय का कर रहीं उपाय।

विश्व की दुर्बलता बल बने,

पराजय का बढ़ता व्यापार।

हँसाता रहे उसे सविलास,

शक्ति का क्रीड़ामय संचार।

शक्ति के विद्युतकण, जो व्यस्त,

विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।

समन्वय उसका करे समस्त,

विजयिनी मानवता हो जाय।"

मनु की चिन्ता

किस गहन गुहा से अति अधीर,

झंझा प्रवाह सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर।
ले साथ विकल परमाणु पुंज नभ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर॥
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन।
प्राणी कटुता को बांट रहा जगती को करता अधिक दीन॥
निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता।
संघर्ष कर रहा सा जब से, सबसे विराग सब पर ममता॥
अस्तित्व चिरंतन धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर।

किस लक्ष्य भेद को शून्य चीर?

देखे मैंने वे शैल-श्रृंग,

जो अचल हिमानी से रञ्जित उन्मुक्त, उपेक्षा भरे तुङ्ग।
अपने जड़ गौरव के प्रतीक वसुधा का कर अभिमान भङ्ग॥

अपनी समाधि में रहे सुखी वह जाती हैं नदियां अबोध।
कुछ स्वेद बिंदु उसके लेकर वह स्तिमित नयन गत शोक क्रोध ॥
स्थिर मुक्ति, प्रतिष्ठा मैं वैसी चाहता नहीं इस जीवन की।
मैं तो अबाध गति मरुत सदृश, हूं चाह रहा अपने मन की ॥
जो चूम चला जाता अग नग प्रति पग में कम्पन की तरंग।
वह ज्वलनशील गतिमय पतंग ॥

अपनी ज्वाला से कर प्रकाश,
जब छोड़ चला आया सुन्दर प्रारम्भिक जीवन का निवास।
वन, गुहा, कुञ्ज मरु अंचल में हूं खोज रहा अपना विकास ॥
पागल मैं, किस पर सदय रहा ? क्या मैंने ममता ली न तोड़।
किस पर उदारता से रींझा ? किसने लगादी कड़ी होड़ ॥
इस विजय प्रान्त में विलख रहीं मेरी पुकार उत्तर न मिला।
लू सा झुलसाता दौड़ रहा कब मुझसे कोई फूल खिला ॥
मैं स्वप्न देखता हूं उजड़ा कल्पना लोक में कर निवास।
देखा कब मैंने कुसुम-हास ॥

इस दुखमय जीवन का प्रकास,
नभ नील लता की डालों में उलझा अपने मुख से हताश।
कलियां जिनको मैं समझ रहा वे कांटे बिखरे आस पास ॥
कितना बीहड़ पथ चला और पड़ रहा कहीं थक कर नितान्त।
उन्मुक्त शिखर हंसते मुझ पर रोता मैं निर्वासित अशांत ॥
इस नियतिनटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही।
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलांच रही ॥

पावस रजनी में जुगनू गण को दौड़ पकड़ता मैं निराश ।
उन ज्योति कणों का कर विनाश ॥

जीवन-निशीथ के अन्धकार !

तू नील तुहिन जल-निधि बन कर फैला है कितना वारपार ।
कितनी चेतनता की किरणें हैं डूब रही ये निर्विकार ॥
कितना मादक तम, निखिल भुवन भर रहा भूमिका में अभंग ।
तू मूर्तिमान हो छिप जाता प्रतिपल के परिवर्तन अनंग ॥
ममता की क्षीण अरुण रेखा मिलती है तुझ में ज्योतिकला ।
जैसे सुहागिनी की उर्मिल अलकों में कुंकुमचूर्ण भला ॥
रे चिर-निवास-विश्राम प्राण के मोह जलदछाया उदार ।
मायारानी के केशभार ॥

जीवन-निशीथ के अन्धकार !

तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन धूम सा दुर्निवार ।
जिसमें अपूर्ण-लालसा कसक, चिनगारी सी उठती पुकार ॥
यौवन मधुवन की कालिन्दी वह रही चूम कर सब दिगन्त ।
मन शिशु की क्रीड़ा नौकायें बस दौड़ लगाती हैं अनन्त ॥
कुहुकिनि अपलक दृग के अञ्जन ! हँसती तुझमें सुन्दर छलना ।
धूमिल रेखाओं से सजीव चंचल चित्रों की नव-कलना ॥
इस चिर प्रवास श्यामल पथ में छायी पिक प्राणों की पुकार ।
बन नील प्रतिध्वनि नभ अपार ॥

यह उजड़ा सूना नगर प्रान्त,

जिस में सुख दुख की परिभाषा विध्वस्त शिल्प सी हो नितान्त ।
निज विकृत वक्र रेखाओं से, प्राणी का भाग्य बनी अशान्त ॥

कितनी सुखमय स्मृतिया, अपूर्ण रुचि बनकर मंडराती विकीर्ण ।
इन ढेरों मे दुख भरी कुरुचि दब रही अभी वन पत्र जीर्ण ॥
आती दुलार की हिचकी सी सूने कानो मे कसक भरी ।
इस सूखे तरु पर मनोवृत्ति आकाश बेलि सी रही हरी ॥
जीवन समाधि के खंडहर पर जो जल उठते दीपक अशान्त ।
फिर बुझ जाते वे स्वयं शान्त ॥

निराला

(राम की शक्ति-पूजा)

अमा निशा, उगलता गगन घन अन्धकार ।
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार ।
अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि विशाल ।
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल ।
स्थिर राघवेन्द्र को, हिला रहा फिर-फिर संशय ।
रह रह उठता जग जीवन मे, रावण-जय-भय ।
जो हुआ नही आज तक, हृदय रिपु-दम्य-श्रान्त ।
एक भी अयुत-लक्ष मे, रहा जो दुराक्रान्त ।
कल लड़ने को हो रहा, विकल वह बार बार ।
असमर्थ मानता मन, उद्यत हो हार हार ।
ऐसे क्षण अन्धकार में, जैसे विद्युत ।
जागी पृथ्वी - तनया - छवि अच्युत ।

देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन।
विदेह का, प्रथम स्नेह का, लतान्तराल मिलन।
नयनों का नयनों से गोपन, प्रिय सम्भाषण।
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन।
कांपते हुए किसलय, भरते प्राण-समुदय।
गाते खग नव जीवन परिचय, तरु मलय वलय।
ज्योति प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय।
जानकी नयन कमनीय, प्रथम कम्पन तुरीय।
सिहरा तन, क्षणभर, भूला मन, लहरा समस्त।
हर धनुभंग को पुनर्वार, ज्यों उठा हस्त।
फूटी स्मित, सीता-ध्यान-लीन राम के अधर।
फिर विश्व विजय-भावना हृदय में आई।
दे आये याद दिव्यशर अगणित मन्त्रपूत,
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर,
फिर देखी भीममूर्ति आज रण देवी जो,
आच्छादित किये हुए सन्मुख समग्र नभको,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ बुझ कर हुए क्षीण,
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन,
लख शंकाकुल हो गये अतुल बल शेष-नयन!
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।

फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खलखल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।

उद्‌बोधन

गरज गरज घन अन्धकार मे गा अपने संगीत,
बन्धु वे बाधो बन्ध-विहीन,
आंखो में नव जीवन की तू अंजन लगा पुनीत,
बिखर झर जाने दे प्राचीन ।
बार बार उरकी वीणा में कर निष्ठुर झङ्कार,
उठा तू भैरव निर्जन राग ।
बहा उसी स्वर मे सदियों का दारुण हाहाकार,
संचरित कर नूतन अनुराग ।
मन्द्र उठा तू बन्द-बन्द पर जलने वाली तान,
विश्व की नश्वरता कर नष्ट ।
जीर्ण क्षीर्ण जो, दीर्ण धरा मे प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट ।
छोड़ छोड़ दे शङ्काएं, रे निर्झर-गर्जित वीर,
उठा केवल निर्मल निर्घोष,
देख सामने बना अचल उपलो को उत्पल, धीर,
प्राप्त कर फिर नीरव संतोष ।

भर उद्दाम वेग से बाधा हर तू कर्कश प्राण,
दूर करदे दुर्बल विश्वास।
किरणों से गति से आ, आ तू, गा तू गौरव गान,
एक कर दे पृथ्वी-आकाश।

भिक्षुक

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बांए से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिनी दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए
भूख से सूख होंठ जब जाते,
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते—
घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

ठहरो, अहा मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूंगा,
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम,
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय मे खींच लूंगा।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

प्रार्थना

जग के उर्वर आंगन मे,
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु लघु तृण तरु पर,
हे चिर, अव्यय चिर नूतन !

बरसो कुसुमों के लघुवन,
प्राणों के अमर प्रणय धन,
स्मिति स्वप्न अधर पलकों में,
उर अंगों में सुख यौवन।

छू छू जग के मृत रज कण,
कर दो तृण तरु में चेतन,
मृन्मरण बांध दो जग का,
दे प्राणों का आलिंगन !

बरसो सुख ,बन सुखमा बन,
बरसो नव जीवन के धन !
दिशि दिशि में औ पल पल में,
बरस संसृति के सावन !

जीवन का अधिकारी

जो है समर्थ, जो शक्तिमान,
जीने का है अधिकार उसे ।
उसकी लाठी का बैल विश्व,
पूजता सभ्य-संसार उसे !

दुर्बल का घातक दैव स्वयं,
समझो बस भू का भार उसे ।
'जैसे को तैसा'—नियम यही,
होना ही है सहार उसे ।

है दास परिस्थितियो का नर,
रहना उसके अनुसार उसे ।
जीता है योग्य सदा जग मे,
दुर्बल ही है आहार उसे ।

तृण, झप पशु से नर तन देता,
जीवन विकास का तार उसे ।
वह शासन क्यो न करे भू पर,
चुनना है सब का सार उसे ।

मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्स्ना मे जब संसार,
चकित रहता शिशु सा नादान,

विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

सघन मेघों का भीमाकाश,
गरजता है जब तम साकार ;
दीर्घ भरता समीर निश्वास,
प्रखर भरती जब पावसधार ;
न जाने तपक तड़ित में कौन,
मुझे इंगित करता तब मौन !

देख, वसुधा का यौवन-भार,
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उरके से मृदु-उद्गार,
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छवास,
न जाने सौरभ के मिस कौन,
संदेशा मुझे भेजता मौन ।

क्षुब्ध जलशिखरों को जब वात,
सिंधु में मथ कर फेनाकार,
बुल-बुलों का व्याकुल संसार,
बना, बिथुरा देती अज्ञात,
उठा तब लहरों के कर कौन,
न जाने मुझे बुलाता मौन !

स्वर्ण, सुख श्री, सौरभ में भोर,
विश्व को देती है जब बोर,
विहग-कुल की कल कण्ठ हिलोर
मिला देती भू नभ के छोर,
न जाने अलस पलक दल कौन,
खोल देता तब मेरे मौन !

तुमुल तम में जब एकाकार,
ऊंघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर-कुल की झनकार,
कंदा देती तन्द्रा के तार ;
न जाने खद्योतों से कौन,
मुझे पथ दिखलाता तब मौन !

कनक छाया में जब कि सकाल,
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल,
तड़प, बन जाते हैं गुंजार ;
न जाने ढुलक ओस में कौन,
खींच लेता मेरे दृग मौन !

बिछा कार्यों का गुरुतर भार,
दिवस को दे सुवर्ण अवसान।
शून्य शय्या में श्रमित अपार,
जुड़ाता जब मैं आकुल प्राण ;

न जाने मुझे स्वप्न में कौन,
फिराता छाया जग में मौन ॥

न जाने कौन अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम, पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान,
अरे सुख दुख के सहचर मौन,
नहीं कह सकता तुम हो कौन ।

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

पराजय गीत

(१)

आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ,
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ,
बढ़ती हुई कतार फौज की, सहसा अस्त व्यस्त हुई,
त्रस्त हुई भावों की गरिमा, महिमा सब संन्यस्त हुई,
मुझ न छेड़ो इतिहासों के पन्ने, मैं गतधीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ,

(२)

मैं हूं विजित जीत का प्यासा, विजित भूल जाऊं कैसे,
यह संघर्षण की घटिका है, बसी हुई हृदय मे ऐसे,

जैसे मां की गोदी में शिशु का दुलार वस जाता है,
जैसे अंगुलीय में मरकत का, नव नग कस जाता है,
'विजय-विजय' रटते मम मनुओं, यह देखो फलकीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुण्ठिता है, खाली तूणीर हुआ।

(३)

गगन भेद कर वरद करों में, विजय प्रसाद दिया था जो,
जिनके वल पर किसी समय में, मैंने विजय किया था जो,
वह सब आज टिमटिमाती स्मृति दीपशिखा वन आया है,
कालान्तर से कृष्ण आवरण में, उसको लिपटाया है,
गौरव गलित हुआ, गुरुता का, निष्प्रभ क्षीण शरीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुण्ठिता है, खाली तूणीर हुआ।

(४)

एक सहस्र वर्ष की माला मैं हूं उलटी फेर रहा,
उन गत युग के गुंम्फिल मनकों को मैं फिर फिर हेर रहा,
घूम गया जो चक्र उसी की ओर देखता जाता हूं,
इधर-उधर सब तरफ पराजय की ही मुद्रा पाता हूँ,
आंखों का ज्वलन्त क्रोधानल क्षीण, दैन्य का नीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुण्ठिता है, खाली तूणीर हुआ।

(५)

विजय सूर्य ढल चुका अंधेरा, लाया है रखने को लाज,
कहीं पराजित का मुख देख न ले यह विजयी कुटिल समाज,
अंचल ? कहां फटा अंचल वह, मां का प्यारा वस्त्र कहां,

कहाँ छिपाऊँ यह मुख अपना, खोकर विजय फकीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ।

(६)

जहां विजय के पिपासार्त हो गए आंख की ओट कई,
जहाँ जूझकर मरे अनेको जहाँ खा गए चोट कई,
वही।आज संध्या को बैठा हूँ, मैं अपनी निधि छोड़े,
कई सियार, श्वान, गीदड़ ये लपक रहे दौड़े दौड़े,
विजित साँझ के झुटपुटे समय कर्कश रव गम्भीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुण्ठिता है, खाली तूणीर हुआ।

(७)

रग रग में ठंडा पानी है अरे उष्णता चली गई।
नस नस में टीसें उठती हैं विजय दूर तक टली सही,
विजय नही रण के प्रागण की धूल बटोरे लाया हूं।
हिय के घावो में, वर्दी के चिथड़ो मे ले आया हूं,
टूटे अस्त्र, धूल माथे पर, हा ! कैसा मैं वीर हुआ,
आज खड्ग की धार कुण्ठिता है, खाली तूणीर हुआ।

(८)

वर्दी फटी, हृदय घायल, मुख पर कारिख क्या वेश बना ?
आंखें सकुच रही कायरता के पंकिल से देश सना,
अरे पराजित ओ रणचण्डी के कपूत हट जा हट जा,
अभी समय है कह दे मां, मेदिनी जरा फट जा फट जा,

हन्त पराजय-गीत आज क्या, द्रुपद-सुता का चीर हुआ।
आज खड्ग की धार कुण्ठित है, खाली तूणीर हुआ।

कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?

चलित चरणों की जगह अब, कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?
युग युगान्तर के समाश्रय, अडिग अशरण-शरण वे ?
इधर देखा, उधर झांका, मिल गए कुछ चपल लोचन,
मैं समझ बैठा कि मुझको मिल गए संकट-विमोचन ;
किन्तु करता हूं विगत कर आज जब सिंहावलोकन ;
देखता हूं तब अनस्थिर भावना के आचरण ये ;
प्राण के उछ्वास मे मैं खीच लाया शूल कितने !
और इस नि.श्वास में उड़ उड़ गए हैं फूल कितने !
दान में स्मृति-रूप-कंटक मिल गए हैं आज इतने—
कि उन सुमनों के हुए हैं शूल ही नव संस्करण ये ;
नेत्र विस्फारित किये, जल थल, असीमाकाश मे नित
फिर रहा हूं खोजता कुछ चीज, मैं व्याकुल, प्रवंचित ;
भाव रेखा पर हुई है चिर विफलता छाप अंकित,
विकल अन्वेषण सुरति को कब करेंगे पिय वरण वे ?
दीप लघु मैं, तव अलख कर से समय नद में प्रवाहित,
नित्य-प्रति प्रतिकूलता के प्रबल झोंको से प्रवाहित ;

टिमटिमाता वह रहा हूँ मैं जनम का ही निराश्रित :
दीप-संपुट कब बनेगी कर-अँगुलियां मनहरण वे ?

कौन जाने, यह विकम्पित दीप तुमने कब बहाया ।।
क्या पता तुमने इसे फिर कब बुझाया, कब जगाया ?
है पता इतना कि इसने आज तक प्रश्रय न पाया,
हैं बहाए जा रहे इसको प्रवाही उपकरण ये ?

काँप रही है ज्योति, अब तो तुम इसे करदो अनिङ्गित
तव निवास-स्थान में अब लौ लगे इसकी अशंकित,
सजन ज्योतिर्मय, करो निज पुंज में इसको सुसंचित,
थाम दो अब तो जरा इसके अवश से सन्तरण ये ।

विप्लव-गायन

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुआंधार जग में छा जाये,
बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात् भूधर हो जायें,
पाप-पुण्य सदसद् भावों की धूल उड़ उठे दायें, बायें
नभ का वक्षस्थल फट जाये तारे टूक-टूक हो जायें,
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाये ।
माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाये,

आंखों का पानी सूखे, वे शोणित की घूंटें हो जायें,
एक ओर कायरता कांपे, गतानुगति विगलित हो जाये,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह, अचल शिला विचलित हो जाये,
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ धाये,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाये,
नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जायें,
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें
शान्ति दण्ड टूटे, उस महारुद्र का शासन थर्राये,
उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास विश्व के प्राङ्गण में घहराये,
नाश ! नाश !! हा महानाश !!! की प्रलयङ्करी आंख खुल जाये
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाये,
"सावधान" मेरी वीणा में चिनगारियां आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें युगलांगुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैं,
कण्ठ रुका जाता है, महानाश का गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में, हृत्तल में अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झंखाड़ व्याप्त हैं इस ज्वलन्त गायन के स्वर से,
रुद्ध-गीत विक्षुब्ध तान निकली है मेरे अन्तर-तर से,
कण कण में है व्याप्त वही स्वर रोम रोम गाता है वह ध्वनि,
वही तान गाती रहती है, कालकूट-फणि की चिन्तामणि,
जीवन-ज्योति लुप्त हैं अहा ! सुप्त हैं संरक्षण की घड़ियां,
लटक रही हैं प्रतिपल में इस नाशक संभक्षण की लड़ियां,

चकनाचूर करो जग को गूंजे ब्रह्माण्ड नाश के स्वर से,
रुद्र-गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अन्तर-तर से।
दिल को मसल मसल मेंहदी रचता आया हूं मैं देखो,
एक एक अंगुलि परिचालन में नाशक ताण्डव पेखो।
विश्वमूर्ति ! हट जाओ-यह वीभत्स प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े टुकड़े हो जाओगी, नाशमात्र अवशेष रहेगा।
आज देख आया हूँ, जीवन के सब राज समझ आया हूँ।
भ्रू-विलास में महानाश के पोषक-सूत्र परख आया हूं।
जीवन-गीत भुला दो कण्ठ मिलादो मृत्यु गीत के स्वर से,
सिद्ध गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अन्तर-तर से॥

सुश्री महादेवी वर्मा

वीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिन्ह जीवन में,
शाप हूं जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ,
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ, जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तनसे, छांह वह चल हूं,

दूर तुमसे हूं अखण्ड सुहागिनी भी हूँ,
आग हूं जिससे दुलकते विन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको विके हैं पांवड़े पलके,
पुलक हूं वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूं वही प्रतिविम्ब जो आधार के उर में,
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ,
नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार का आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र का मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मिति की चाँदनी भी हूँ।

अधिकार

वे मुसकाते फूल नहीं,
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप नहीं,
जिनको आता है वुझ जाना,

वे नीलम के मेघ नहीं,
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज नहीं,
जिसने देखी जाने की राह,

वे सून से नयन नहीं,
जिनके बनते आँसू-मोती,
वह प्राणो की सेज नहीं,
जिसमें बेसुध पीड़ा रोती,

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमे अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं,
जिसने जाना मिटने का स्वाद,

क्या अमरो का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव ! अरे,
वह मेरे मिटने का अधिकार।

उलझन

अलि कैसे उन को पाऊं,

वे आँसू बनकर मेरे,
इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलको के बन्धन में
मैं बाँध बाँध, पछताऊँ,

मेघों मे विद्युत सी छवि,
उनकी बनकर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी मे,
मिलने में झाँक न पाऊँ,

19198

वे आभा बन खो जाते,
शशि किरणों की उलझन में,
जिसमें उनको कण कण में,
ढूंढ़ पहिचान न पाऊं,

सोते सागर की धड़कन,
बन लहरों की थपकी से,
अपनी यह करुण कहानी,
जिसमें उनको न सुनाऊं,

वे तारक बालाओं की,
अपलक चितवन बन आते,
जिसमें उनकी छाया भी,
मैं छू न सकूं अकुलाऊं,

वे चुपके से मानव में,
आ छिपते उच्छ्वासें बन,
जिसमें उनकी सांसों में,
देखूं पर रोक न पाऊं,

वे स्मृति बनकर मानस में,
खटका करते हैं निशिदिन,
उनकी उस निष्ठुरता को,
जिससे मैं भूल न जाऊं।

मुरझाया फूल

था कली के रूप, शैशव में अहो सूखे सुमन।
हाय करता था खिलाती अंक में तुझको पवन॥
खिल गया जब पूर्ण तू मंजुल सुकोमल पुष्प पर,
लुब्ध मधु के हेतु मंडराने लगे आने भ्रमर॥
स्निग्ध किरणें चन्द्र की तुझको हँसाती थी सदा,
रात तुम पर वारती थी, मोतियों की संपदा।
लोरियाँ गाकर मधुप निद्रा विवश करते तुझे,
यत्न माली के रहे आनन्द से भरते तुझे॥
कर रहा अठखेलिया इतरा सदा उद्यान में,
अन्त का यह दृश्य आया था कभी का ध्यान में?
सो रहा तू अब धरा पर शुष्क बिखराया हुआ।
गन्ध कोमलता नही मुख मंजु मुरझाया हुआ॥
आज तुझको देखकर चाहक भ्रमर आता नही,
लाल अपना राग तुझ पर प्रातः बरसाता नही,
जिस पवन ने अंक में ले प्यार था तुझको किया,
तीव्र झोंके से सुला उसने तुझे भू पर दिया॥
कर दिया मधु और सौरभ दान सारा एक दिन।
किन्तु रोता कौन है तेरे लिए दानी सुमन?
मत व्यथित हो फूल! किसको सुख दिया संसार ने,
स्वार्थमय सबको बनाया है यहाँ करतार ने॥

विश्व में, हे फूल ! तू सब के हृदय भाता रहा,
दान कर सर्वस्व फिर भी हाय हर्षाता रहा,
जब न तेरी ही दशा पर दुःख हुआ संसार को,
कौन रोएगा सुमन ! हमसे मनुज निस्सार को ?

रामकुमार वर्मा

विश्ववंद्य बापू

क्रियाशील दृढ़ हाथ और
मुखपर मृदुतम मुस्कान
कठिन साधना से निकली हो,
जैसे सिद्धि महान् !
एक तेज—जिसमें कितने,
सूर्यों का अभ्युत्थान !
एक मन्त्र—जिससे अभिशापों
से निकले वरदान।
स्वर जो विश्व-साप को सब अनभूति लिए है साथ।
है स्वतन्त्रता के प्रदीप-सा पराधीन के हाथ॥
ये सब जैसे है विभूतियां
जो लेकर अनुराग।
बापू ! सज्जित करने आई,
आज तुम्हारा त्याग।

रामधारीसिंह दिनकर

हिमालय

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

साकार दिव्य गौरव विराट !
पौरुष के पुन्जीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

युग—युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त,
युग—युग गर्वोन्नत, नित महान ।
निस्सीम व्योम में तान रहे,
युग से किसकी महिमा-वितान ?
कैसी अखण्ड यह चिर समाधि ?
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान ?
तू महाशून्य में खोज रहा,
किस जटिल समस्या का निदान ?
उलझन का कैसा विषम जाल ?
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ मौन तपस्या-लीन यती !
पल भर तो कर नयनोन्मेष !

रे ! ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पद स्वदेश !
सुखसिंधु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र !
गंगा यमुना की अमिय धार,
जिस पुण्यभूमि की ओर वही
तेरी विगलित, करुणा उदार !
जिसके द्वारों पर खड़े क्रांत
सीमापति ! तूने की पुकार—
पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार।
उस पुण्यभूमि पर आज तपी
रे ! आन पड़ा संकट कराल,
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
डंस रहे चतुर्दिक विविध व्याल।
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियां लुट गईं, मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष।
तू ध्यान-मग्न ही रहा, इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश !
कितनी द्रुपदा के वाल खुले;
कितनी कलियों का अन्त हुआ,
कह हृदय खोल चित्तौर ? यहां,

कितने दिन ज्वाल-वसन्त हुआ।
पूछो सिकतागण से हिमपति !
तेरा वह राजस्थान कहां ?
वन-वन स्वतंत्रता-दीप लिये
फिरने वाला बलवान कहां ?
तू पूछ अवध से, राम कहां ?
वृन्दा बोले, घनश्याम कहां ?
ओ मगध ! कहां मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहां ?
पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी
तू पूछ, कहां उसने खोई
अपनी अनंत निधियां प्यारी ?
री कपिलवस्तु ! कह, बुद्ध देव
के वे मंगल उपदेश कहां ?
तिब्बत, ईरान, जापान, चीन
तक गये हुए संदेश कहां ?
वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी-शान कहां ?
ओ री उदास गंडकी ! बता
विद्यापति कवि के गान कहां ?
तू तरुण देश से पूछ अरे !

गूंजा यह कैसा ध्वंस-राग ?
अम्बुधि-अंतस्तल बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग ?
प्राची के प्राङ्गण बीच देख
जल रहा स्वर्ग-युग अग्नि ज्वाल,
तू सिंहनाद कर जाग यती !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल।

रे रोक युधिष्ठिर को न यहां
जाने दे उनको स्वर्ग धीर !
पर फिरा हमें गाण्डीव गदा,
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।
कह दे शंकर से आज करें
वे प्रलय नृत्य फिर एक-बार।
सारे भारत में गूंज उठे
"हर हर बम" का फिर महोच्चार।
ले अंगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैल-राट ! हुङ्कार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद !
तू मौन त्याग, कर सिंहनाद
रे तपी ! आज तप का न काल
नवयुग शंख ध्वनि बजा रही
तू जाग जाग मेरे विशाल !

मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
जागो नगपति ! मेरे विशाल !

गुरुभक्त सिंह
(नूरजहाँ)

ओ स्वप्नों के संसार विदा, ओ बालकपन के प्यार विदा ।
ओ शोभा के आगार विदा मनमोहन के मनुहार विदा ॥
यमुना का कलकल नाद विदा, आंखों का उन्माद विदा ।
आमोदों का प्रासाद विदा, वह जीवन का आह्लाद विदा ॥
उस मधुर कल्पना-शिल्पी के महलों का माया-जाल विदा ।
उस मेरे हृदय-सरोवर का सुन्दर सुखद मराल विदा ॥
कौमार्य-कली के कलित कामनाओं का मौन विकास विदा ।
वह दिनकर संगम से प्राची में ऊषा का मृदुहास विदा ॥
ओ अनिल-नीव-पर बने हुए अभिलाषाओं के कोट विदा ।
ओ क्रूर काल के कठिन करों के अन्तस्तल की चोट विदा ॥
हिम सरिता में बहते विलास विनिमय सुख के हिमखण्ड विदा ।
आकांक्षाओं के झंझा के झकझोर झपेट प्रचण्ड विदा ॥
चिर परिचित हृदय देश अपनाने का वह विजयोल्लास विदा ।
उस प्यारे शिशु के गिर गिर पैरों चलने का अभ्यास विदा ॥
जिसमें मैं गुड़ियों से खेली मेरी ममता का गेह विदा ।
जिन आँखों की मैं पुतली थी उन सुहृद—जनों का स्नेह विदा ।

जिसमे मैं हंस पकड़ती थी वह जल क्रीड़ा की नहर विदा।
वह सुन्दर सुन्दर राजभवन श्रो महामनोरम विदा विदा॥
जिसमें झूला झूला करती उस तरु की सुन्दर डाल विदा।
जो दोलित करता पेंग वढा वह कोमल बाहु विशाल विदा॥
आनन्द अश्रु जो फैलाता वह जीवन का वह स्रोत विदा।
अवलम्ब रहा जल-प्लावित का जो आशा का वह पोत विदा॥

वह इन्द्रधनुष सा शुभ्र विरह-वारिधि का सुन्दर सेतु विदा।
उस करवट ले ले सोनेवाले मन्द भाग्य की याद विदा।
वह छिप छिप कर उठने वाली मन की आनन्द हिलोर विदा।
मेरे मानस में वन्दी होने वाले वह चितचोर विदा॥
प्यारे दामन की पट्टी से बांधे चोटों की टीस विदा।
उस मरु प्रदेश में खोई सरिता धारा के वारीश विदा॥

*　　　　*　　　　*

छू नहीं सकेगी तुमको अब मेरे भविष्य के चांद विदा।
सब तार नियति ने तोड़े हैं मादक सरोद के नाद विदा॥
लंगर खींचे सब पाल खुले, जाता विदेश जलयान विदा।
हृदयाम्बुधि के उर्मिल थपेड़ तट ले जाते वह यान विदा॥
विस्मृति सागर मे डुबा रही हूँ हठकर आती याद विदा।
वह लहरों सी उठ आती है इंगित से बुला सनाद विदा॥
वे हिचकी बन कर आते है आँसू बनकर होगये विदा।
वे पीड़ा बन कर उठते हैं किस्मत बन कर सो गये विदा॥
स्वच्छन्द विहंग की सदा अपरमित ऊंची सुखद उड़ान विदा।
नैराश्य-निशा का कभी न होने वाला सुखद विहान विदा॥

शब्दार्थ

प्रथम खण्ड

पृष्ठ ३१

अनत—अन्यत्र, और कहीं।

सचु—सुख।

कमल नैन—कमल के तुल्य हैं नैन जिसके, अर्थात् श्रीकृष्ण।

महातम—महात्म्य, बड़प्पन अथवा महात्मा।

कमलनैन''''महातम—महात्मा श्री कृष्ण को छोड़कर, अथवा श्रीकृष्ण के महात्म्य को छोड़कर।

धावै—ध्यावे, ध्यान करे अथवा दौड़ता है।

खनावै—खोदता है।

दरै प्रसन्न होता है, दया करता है।

रांकल—रंक, निर्धन।

रूपल—रूपवान्, सुन्दर।

छरै—छलता है, पीड़ित करता है।

अधम—नीच।

जठर—उदर, पेट।

परतिग्या—प्रतिज्ञा।

पृष्ठ ३४

हिय—हृदय।

पयादे—पैदल।

भीर—विपत्ति, दुःख।

स्यंदन—रथ।

कपिध्वज—कपि (हनुमान्) है ध्वजा पर जिसकी अर्थात् अर्जुन।

छत्रिहि गतिहि—क्षत्रियों की गति, अर्थात् युद्ध द्वारा मुक्ति।

सरिता—नदी।

रुधिर—रक्त।

हौं—मैं।

महरि—स्त्री।

ढोटा—पुत्र।

गोरस—दुग्ध।

हलरावै—हिलाती है।

दुलराई—दुलार (प्यार) करके।

मल्हावै—लाड़ करती है।

पृष्ठ ३५

आनि—आकर।

सैन—संकेत, इशारा।

पृष्ठ ४५

पाख=पंख ।

दावन=दामन, पल्ला, कपड़े का छोर ।

गुझवाती=इस शब्द की व्युत्पति सन्दिग्ध है । गुझ शब्द गुह्य से बना प्रतीत होता है । पूरे शब्द का अर्थ है बात छिपाना । उपेक्षा करना ।

डगर=मार्ग, रास्ता ।

जोइ=देख लिया, खोज लिया ।

छोई=छाछ, मठा ।

पृष्ठ ४६

मंझारन=मध्य, बीच में ।

पाहन=पाषाण, पत्थर ।

पुरन्दर= इन्द्र ।

कालिन्दी=यमुना ।

लकुटी=लकड़ी ।

कामरिया=कम्बल ।

आठहुँ सिद्धि=आठ सिद्धियां जो ये हैं ।
अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ।

नवोनिधि=नौ निधियां ये हैं—
महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, और खर्व ।

कलधौत=सुवर्ण ।

भावतो=भाता है, अच्छा लगता है ।

अधरान-धरी=होठों पर रखी हुई ।

छोहरियां=कुमारियां ।

छछिया=छोटी सी हांडी ।

अछेद=अच्छेद, जो काटा न जा सके ।

अभेद=अभेद्य, जो तोड़ा न जा सके ।

पचिहारे=थक गये ।

कछोटी=कच्छा, लंगोटी ।

पृष्ठ ४७

कलानिधि=चन्द्रमा ।

हुतो=था ।

नियरे=समीप ।

ठैयां=स्थान ।

बनता=स्त्रियां ।

कानि=लज्जा, लिहाज ।

चेटक सो=निश्चयपूर्वक ।

दुरयौ=छिपा हुआ ।

पलोटत=दाब रहा है ।

गेहिनी=गृहिणी, पत्नी ।

गौतम गेहिनी=गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या ।

रविनंद—यमराज ।
संक—शंका, भय ।
ढरकायो—लुढ़का दिया ।

पृष्ठ ४८

बयार—वायु ।
लबार—झूठा ।
दीठि—दृष्टि ।
सकारे—प्रातः ।
मनोज—कामदेव ।
वाटिका—बगीची ।
ढिग—पास ।

पृष्ठ ४९

अनिवार—तीक्ष्ण ।
मात्सर्य—ईर्ष्या, डाह ।
दम्पति—पति-पत्नी ।
निष्ठा—भक्ति ।
कलत्र—स्त्री ।
सविसेह—सविशेष, अत्यन्त ।

पृष्ठ ५०

अहमेव—अहंकार, अभिमान ।
भुसिल—भौंसला उपाधिधारी—अर्थात् शिवाजी ।
ताहि····उछाहको—उसी दिन उन्होंने शत्रुओं के हृदय के उत्साह को जीत लिया ।
भाग—भाग्य ।
अनायास—सहज ही में ।
चक—चक्र, दिशा ।
करि····चाहको—चारों दिशाओं में इच्छा करके ।
जंपत है—कहता है ।
अलकापति—कुबेर ।
मांची—कुर्सी (जिस पर भवन निर्माण किया जाता है ।)

पृष्ठ ५१

हौसनि—अभिलाषा, इच्छाएं ।
उत्तुंग—ऊंचे ऊंचे ।
मरकत—हरे रंग की मणि, पन्ना ।
पुहुपरागन—पुखराज ।
लवली—सुन्दर ।
लवंग—लौंग ।
यलानि—इलायचा ।

पृष्ठ ५२

भानु—सूर्य ।
कृसानु—अग्नि ।
द्विजराम—परशुराम ।
जम्भ—एक दैत्य जिसे इन्द्र ने मारा था ।
सुअम्भ—जल ।
सदम्भ—घमन्डी ।
वारिवाह—बादल ।

रतिनाह—रतिनाथ, कामदेव।

सहसबाह—सहस्रबाहु अर्जुन नाम का राजा जिसे परशुराम ने मारा था।

वितुण्ड—हाथी।

तेज—प्रकाश, सूर्य।

मन्दिर—महल तथा मन्दर पर्वत।

विजन—व्यञ्जन अर्थात् पंखा तथा विजन अर्थात् जनहीन स्थान।

नगन—नग्न, (नंगी) तथा नग (हीरे आदि)।

पृष्ठ ५३

गयवरन—गयम्वरन अर्थात् श्रेष्ट हाथी।

रलत है—मिलता है।

ऐल—समूह (सेना)।

ऐलफैल—सेना के फैलने से।

खैल मैल—खलबली।

खलक—दुनियां, संसार। फारसी का शब्द है।

गैल गैल—स्थान स्थान पर, प्रत्येक मार्ग में।

ठेलपेल—धक्कमधक्का।

उसलत हैं—उखड़ जाते हैं।

झांई छाया, प्रतिबिम्ब।

हरित-दुति—हरी कान्ति वाले, अथवा हरे भरे (प्रसन्न), अथवा हरली गई है कान्ति जिनकी, अर्थात् नष्ट।

बा तन की····दुति होय—इस पंक्ति के तीन अर्थ हैं—

१—जिस राधा के शरीर की परिछाईं पड़ने से कृष्ण (का श्याम शरीर) हरे रंग का हो जाता है।

२—जिसके शरीर की आभा पड़ने से श्याम प्रसन्न हो जाते हैं।

३—जिससे शरीर की छाया पड़ने से श्याम (अर्थात् पाप) नष्ट हो जाते हैं।

बानिक—मेष।

चटक—रंग, आभा।

पृष्ठ ५४

पोत—स्वभाव।

सरत—बनता है।

दमामा—ढोल।

रज-राजस—रजोगुणरूपी धूल अर्थात् चञ्चलता, स्वार्थ आदि दुर्गुण।

नेह चीकने—स्नेह से चिकना-प्रेम युक्त। नेह का अर्थ तेल भी है अतः दूसरा अर्थ है तेल से

चिकना। पंक्ति का भाव इस प्रकार है–जिस तरह तेल से चिकनी वस्तु पर धूल लग जाने से वह मैली हो जाती है इसी प्रकार प्रेमयुक्त हृदय वाले मित्र के साथ अविश्वास आदि करने से उसका मन भी विचलित हो जाता है।

ओथरे—उथला।

कनक—सुवर्ण तथा धतूरा।

अपत—पत्तों से रहित।

पृष्ठ ५५

दई बिडारि—अनादर कर डाला।

दई दई—हाय हाय।

दई—दैव, भाग्य।

पृष्ठ ५६

पंडु—तीतर।

परेई—कबूतरी।

परेवा—कबूतर।

तंगी—[illegible]।

वितु—वित्त, धन।

गौन—[illegible]।

जगनाइक—जगनायक, संसार के स्वामी।

अगापद—दुर्गमता की दशा।

पृष्ठ ५७

पछरा खात—पछाड़ खाता है।

पांच और सात—ननु नच करना, टालमटोल करना।

इनारुन—इन्द्रायण का फल जो बड़ा ही कड़वा लगता है।

चवाव—निन्दा, चुगली।

पृष्ठ ५८

उरझौंहे—उलझने वाले।

बरजै—मना करता।

गैन—हाथी।

बेमहरम—बेमहरम, निर्दय।

आयसु—आयु।

पृष्ठ ५६

निगुरे—निर्गुणी, बुरे।

बुते—बुझे हुए।

अघ—पाप।

सिरान्यौ—बीत गया।

पृष्ठ ६०

मेंड़—सीमा, हद।

पैंज—प्रतिज्ञा।

गर—पाप।

द्वितीय खण्ड

पृष्ठ ६१

भुजा—[illegible]।

मिहिर—सूर्य।

सरा—चिता ।
अनियाऊ—अन्याय ।
बारी—कन्या, लड़की ।
दुआदस बानी—पूर्ण रूप से ।

पृष्ट ६४

परेवा—पक्षी ।
किलकिला—समुद्र का एक जन्तु ।
बहुरा—लौटा ।
अछरिन्ह—अप्सरायें ।
ओनाहीं—उमड़कर आना ।

पृष्ठ ६५

सुरुज—सूर्य ।
परगसी—प्रकाशित हुई ।

पृष्ठ ६६

अजिर—आंगन ।
ओदन—भात ।
राता—रक्त, अनुरक्त ।

पृष्ठ ६७

वीथिन्ह—गलियां ।
मृगया—आखेट, शिकार ।
अनीह—इच्छा रहित ।
सनीरा—अश्रु पूर्ण ।
कदराऊ—कायर बनना ।

पृष्ठ ६८

सिअरे—शीतल ।
तुहिन—पाला ।
तामरस—रक्तकमल ।

पृष्ठ ६९

सुपासू—सुख ।

पृष्ठ ७०

बागरु—बंधन ।
अनुहरत—अनुकूल ।
बादि—वृथा ।

पृष्ठ ७१

रसा—पृथ्वी ।
उपल—पत्थर ।
बारुनि—मदिरा ।
रजायसु—आज्ञा ।

पृष्ठ ७२

दवारी—दावाग्नि ।

पृष्ठ ७४

बादहिं—विचार करते हैं, कहते हैं ।

पृष्ठ ७६

दस्यु—चोर, डाकू आदि नीच लोग ।

तृतीय-खण्ड

पृष्ठ ७७

सौध—प्रासाद, महल ।
कीर—तोता ।
सुरम्य—सुन्दर ।

पार्श्व से—एक ओर से, बगल से।
सौमित्रि—लक्ष्मण।

पृष्ठ ७८

दाडिम—अनार।
सहास्य—हंसी के साथ।
पद्मिनी—कमल के समान कोमल अंग अंग वाली अर्थात् स्त्री। यहाँ उर्मिला से तात्पर्य है।
मराल—हंस।
आवेग—जोश।
संलाप—बातचीत।

पृष्ठ ८०

शिरोरुह—मस्तक, बाल।
कोटर—खोखल।
गर्त—गढ़े।
सलिल—जल।
आवर्त—भंवर।

पृष्ठ ८१

राजकुंज-विहारिका—राजा के कुंज में विहार करने वाली।
सारिका—मैना।
सस्मित—मुस्कराहट के साथ।

पृष्ठ ८२

लोहित—लाल।
व्योमसिंधु—आकाश रूपी समुद्र।
तारक बुद्बुद—तारे रूपी बुलबुले।

पृष्ठ ८३

वणिग्वृत्ति—बनिये का व्यवहार।
खलता है—बुरा लगता है।

पृष्ठ ८४

अलीक—मिथ्या, झूठा।
अर्द्धचन्द्र—गर्दनिया।

पृष्ठ ८५

उडुगन—तारे।
तारकमौक्तिक—तारे रूपी मोती।
जरा—बुढ़ापा।

पृष्ठ ८६

महाभिनिष्क्रमण—गौतमबुद्ध का घर छोड़कर चले जाना महाभिनिष्क्रमण कहलाता है।
प्रच्छन्न—गुप्त, छिपे हुए।

पृष्ठ ८७

अपरिणाम—बुरा फल।
निर्निमेष—बिना पलक मारे।

पृष्ठ ८८

ओक—घर।
त्रिविध दुःख—दैहिक, दैविक और भौतिक तीन प्रकार के दुःख।
विनिवृत्ति हेतु—दूर करने के लिये।
पुरुषार्थ-सेतु—पौरुषरूपी पुल।
कल्याण केतु—सुख का चिन्ह।
भ्रमण—संसार में चक्कर काटना।
भाण—नाटक का एक भेद है।

निर्वाण—बौद्धमत में आत्मा की मुक्त अवस्था को निर्वाण कहते हैं।

प्रयाण—गमन, जाना।

पृष्ठ ८६

दुख जलनिधि डूबी—दुख रूपी समुद्र में डूबी हुई।

नवनलिनी—नया कमल।

विजित-जरा—बुढापे से पराजित हुई अर्थात् बूढ़ी।

सजल-जलद—जल से भरा हुआ बादल अर्थात् नीला बादल।

पृष्ठ ९०

किसलय—कोमल पत्ते।

अंभोज—कमल।

व्योम—आकाश।

मधुमयकारी—आनन्ददायक।

सदन—घर।

स्वर्ग मन्दाकिनी—स्वर्ग गंगा।

श्रुति बिच—कानों में।

खनि—खान।

समुत्फुल्लकारी—विकसित करने वाला।

निराशा-यामिना—निराशा रूपी रात्रि।

व्रज-जन-विहगों—व्रज के निवासी गोपरूप पक्षियों के।

दिनकर शोभी—सूर्य के समान शोभा वाला।

समुद्विग्न—व्याकुल।

पृष्ठ ९१

निविड़तम—घनी।

यजन—यज्ञ।

निर्जरों को—देवताओं को।

सुवन—पुत्र।

मुखरित करता था—गुंजारता था।

सद्म—घर।

पृष्ठ ९२

सुषमा—सौन्दर्य।

बकमालिका—बगलों की पंक्ति।

गिरिसानु—पहाड़ की चोटी।

छिति—भूमि।

फणिनी—सर्पिणी।

विपुल-केलिकला-खनि—अनेक क्रीड़ाओं की खान।

रसा—पृथ्वी।

सरसी—तलैया।

वसुमती—पृथ्वी।

तरुराजि-हरीतिमा—वृक्षों की हरियाली।

पृष्ठ ९३

शुठि—सुन्दर, पवित्र।

मेदिनी—पृथ्वी।

पावस—वर्षा।

प्रतिपत्ति—विश्वास।

पयोद—बादल।

उदक—जल ।

तृणराजि—हरी हरी घास ।

पृष्ठ ६४

श्याम-घन—कृष्णरूपी बादल ।

तिरस्कृत—अपमानित ।

पृष्ठ ६५

वय—आयु ।

निकेत—घर ।

पृष्ठ ६६

नितान्त—सदा ।

निसर्ग—प्रकृति, स्वभाव ।

निरस्त—पराजित, हारकर ।

पृष्ठ ६७

अश्रेय—अमंगलकारी ।

क्लान्त—मलीन, व्याकुल ।

पृष्ठ ६८

उद्वेग—घबराहट ।

लालसा—इच्छा ।

अभिराम—सुन्दर ।

रजनी—रात्रि ।

पृष्ठ ६६

स्पन्दित—हिलता हुआ (व्याकुल) ।

भूमा—पृथ्वी, चित्त की एक अवस्था ।

मारुत—वायु ।

पृष्ठ १००

अमंद—अत्यन्त ।

पृष्ठ १०१

संसृति—सृष्टि ।

सौरभ—सुगंध ।

पृष्ठ १०२

प्रचुर-अत्यन्त ।

उपकरण—साधन ।

उत्स—स्रोत ।

पृष्ठ १०३

समन्वय—मेल ।

गुहा—गुफा ।

जीवन-विक्षुब्ध—जीवन को हिला डालने वाला ।

अनिल—वायु ।

अकल—अग्नि ।

हिमानी—बर्फ का समूह ।

तुंग—ऊँचे ।

पृष्ठ १०४

कुसुम-हास—फूलों का विकास ।

नियतिनटी—भाग्यरूपी नटिनी ।

पृष्ठ १०५

निशीथ—अर्द्ध रात्रि ।

ऊर्मिल—लहराते हुए ।

कालिन्दी—यमुना ।

कुहकिनि—जादूगरनी ।

पृष्ठ १०६

अमानिशा—अमावश की रात।

पृथ्वीतनयाछवि—सीता की शोभा।

पृष्ठ १०७

लतान्तराल—लताओं के बीच में।

प्रपात—झरना।

कमनीय—सुन्दर।

तुरीय—योग साधन की चौथी अवस्था जिसमें आत्मा ब्रह्म से मिलकर एक हो जाती है।

शलभ—पतंगा।

पृष्ठ १०८

भैरव—घोर, भयंकर।

दीर्ण—फटी हुई।

अवसान—अन्त।

उपलों को—पत्थरों को।

पृष्ठ ११०

उर्वर—उपजाऊ।

चिरअव्यय—सदा रहने वाला।

सुखमा—सौन्दर्य।

पृष्ठ १११

झष—मछली।

पृष्ठ ११२

भीमाकाश—भयंकर आकाश।

तड़ित—बिजली।

मधुमास—वसन्त।

विधुर—दुःखी।

पृष्ठ १२८

वितान—चंदोवा, शामियाना।

नयनोन्मेष—नेत्रों का खुलना।

पृष्ठ १३०

भग्नावशेष—खण्डहर।

पृष्ठ १३२

अनिल—वायु।

ल्हा घरे वर।
र्ग।
गूट ।।।
ट ।।
र झरय।
ट
याना।
हना।